Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

७५
नये पैसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

मछलियाँ भी घोंसला बनाती हैं ५
—कुमारी प्रमिला

मेरिनर की शुक्र यात्रा ९
—हरीश अग्रवाल

आयोडीन १३
—चन्द्रकुमार

चुलबुली बुलबुल १८
—सुरेशसिंह

प्राचीन जलवायु २२
—नरेन्द्रसिंह माथुर

जी, मैं कंगारू हूँ २६
—प्रकाशमोहन गर्ग

कर्णातीत ध्वनियां ३२
—डा. दयाप्रसाद खण्डेलवाल

बगैर दवा सर्दी जुकाम से छुटकारा ३७
—रामप्रसाद जैन

ज्हॉन बेयर्ड ४२
—गुणाकर मुले

पूरब का चुम्बक—मसाले ४६
—राजेन्द्रकुमार

यौन परिवर्तन ५१
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ४१
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४५
विज्ञान-क्लब ५५
इनाम लो ५८
आपके प्रश्न ६१
तुम्हारी कलम से ६४

अपनी बात

विज्ञान के शिक्षण में ब्रिटेन ने गत मास महत्त्वपूर्ण नया कदम उठाया है। देश-विदे विज्ञान-शिक्षकों तथा उनके विभिन्न संगठनों एक बृहत् संगठन में सम्मिलित होने का आह किया है।

७ जनवरी, १९६३ को 'एसोसिएशन साइंस एजूकेशन' के नाम से इस नये संगठन स्थापना ९००० सदस्यों की प्रारम्भिक सदस्य से की जा चुकी है। बरमिंघम विश्वविद्याल उपकुलपति सर राबर्ट एटकिन इसके प्रथम अ हैं। प्रधान सचिव के पद से श्री ई. डब्ल्यू टैप इसका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि संगठन ससार भर के (विशेषत: कामनवेल्थ राष्ट्रों में स्थित विज्ञान के शिक्षकों से तथा उ विभिन्न संगठनों से सम्पर्क स्थापित करने नयी सूझें, नये विचारों का आदान-प्रदान क लिए बनाया गया है।

उक्त अवसर पर उपस्थित दो भारतीय प्र निधि श्री आर. सी. दास और श्री एच. बर्थाकुर यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए ब्रिटेन में आज जबकि कैसा भी वैज्ञानिक उपक सहज प्राप्य तथा खरीदा जा सकता है, कु उपकरण वहाँ के शिक्षकों ने स्वयं ही नि करके प्रदर्शित किये थे।

विज्ञान-लोक इस नयी संस्था का स्व करता है और आशा करता है कि हमारे देश विज्ञान-शिक्षण-तंत्र इससे अवश्य नया दिशा-श प्राप्त करेगा और विज्ञान के बढ़ते हुए चरण साथ कदम से कदम मिलाये रहेगा।

वर्ष ४

अंक १

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

देश को समृद्ध बनाने में रेलों को महत्वपूर्ण काम करना है। और आज तो देश की रक्षा के लिए उनका काम और भी महत्वपूर्ण हो उठा है।

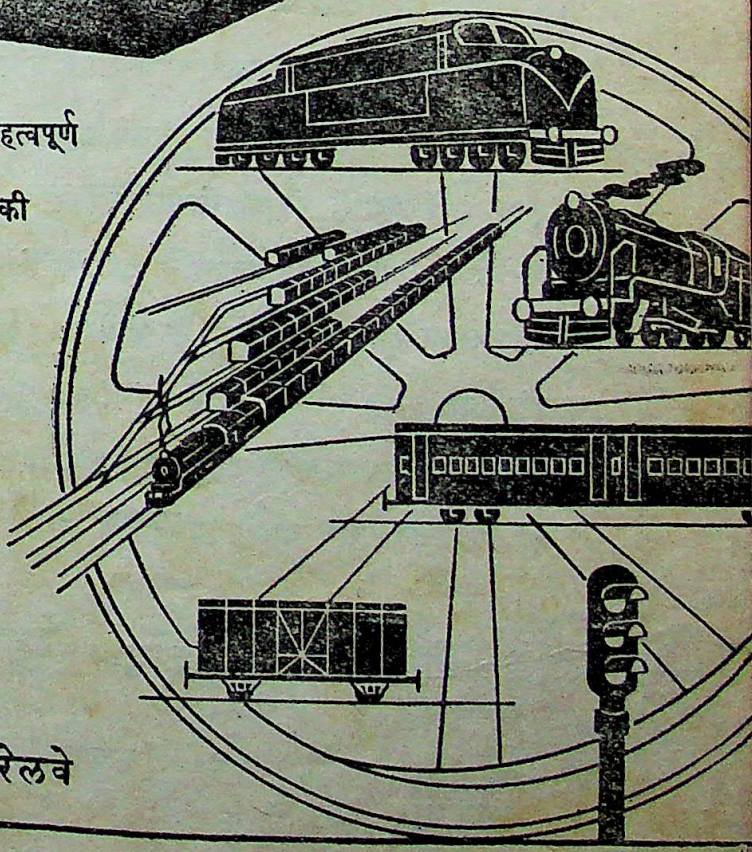

मध्य और पश्चिम रेलवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बचत राष्ट्र की बचत है

प्रीमियम इनामी बांड खरीदिये

बड़े इनाम के लिए

बड़े लाभ के लिए

बड़े काम के लिए

१०० रु. और ५ रु. मूल्यों के ये बेयरर बांड भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यालयों, भारतीय राज्य बैंक और उसके सहायक बैंकों की शाखाओं, खजानों तथा छोटे खजानों और डाकखानों में उपलब्ध हैं। बांड की रकम पाँच साल बाद १० प्रतिशत प्रीमियम सहित वापस कर दी जायेगी। इसके अलावा इन बांडों के खरीददार १९६४ में इनामों की दो निकासियों में भाग ले सकेंगे। एक-एक करोड़ रुपये के प्रत्येक प्रकार के बांड के लिए हर निकासी में पाँच-पाँच लाख रुपये के इनाम रखे जायेंगे। इस प्रकार १०० रु. के बांडों पर २४३ और ५ रु. के बांडों पर ५६८ इनाम बाँटे जायेंगे। इनामों की संख्या और उनकी रकम सीमित नहीं होगी बल्कि बांडों की बिक्री में होने वाली वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जायेगी।

लाभ (प्रीमियम) और इनाम दोनों आय-कर से मुक्त

[सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रसारित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछलियाँ भी घोंसला बनाती हैं

कुमारी प्रमिला

पक्षियों को छोड़कर बन्दरों का ही घोंसला बनाना कम अचरजभरा नहीं। कुछ मछलियाँ भी ऐसी हैं जो घोंसला बनाती हैं। शरीर में २-४ इंच की, जीवन भी कुल ३-४ वर्ष का किन्तु तेजी बहुत रहती है। यह मछलियाँ स्टिकलबैक (Stickleback) तथा ट्यूबनोज (Tubenose) हैं।

इन्हीं मछलियों के नर प्राणी घोंसले बनाकर रहना पसन्द करते हैं, विशेषतः ऋतुकाल में। इनके लम्बे आकार को देखकर प्रायः ही पाइपफिश (Pipefishes) तथा नीडलफिश (Needlefishes) का भ्रम हो जाता है। इनके बारे में अनेक मनोरंजक विवरण प्राप्त किये गये हैं। भूमण्डल के उत्तरी गोलार्द्ध में समशीतोष्ण सागर-जल में तथा नदियों में ये अधिक पायी जाती हैं। कुछ जातियाँ खारे तथा मीठे, दोनों तरह के पानी में सरलता से रह लेती हैं।

स्टिकलबैक

यह नाम इन्हें इसलिए दिया गया है कि इनकी पीठ पर पंक्तिबद्ध काँटे से निकले रहते हैं। ये काँटे पाव इंच से बड़े नहीं होते किन्तु बड़े पैने होते हैं और इनके लिए अस्त्र का काम देते हैं। काँटों की संख्या जाति विशेष पर आधारित रहती है। कहीं केवल तीन ही होते हैं तो कहीं पन्द्रह तक। कई मछलियों के दोनों पार्श्व कवचनुमा अस्थि-पट्टियों से सुरक्षित रहते हैं। उन पट्टिकाओं की भी संख्या विभिन्न रहती है। अधिक से अधिक ३६ पट्टिकाएँ तक देखी गयी हैं। ये मछलियाँ कैसे पानी में रहती हैं, उस पानी का ताप तथा खारापन कितना है, इन्हीं पर इन पट्टिकाओं की संख्या भी निर्भर रहती है।

इन मछलियों के वे काँटे इन्हें तब सहायक नहीं होते जब कुछ बड़े पक्षी तथा अन्य जीव इन्हें बड़े चाव से अपने आहार में मिला लेते हैं। उनके अतिरिक्त फीताकृमि (tapeworms) भी इनके लिए कम मुसीबत खड़ी नहीं करते। वे अपने अण्डों को इनके शरीर में छोड़ देते हैं जो भीतर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

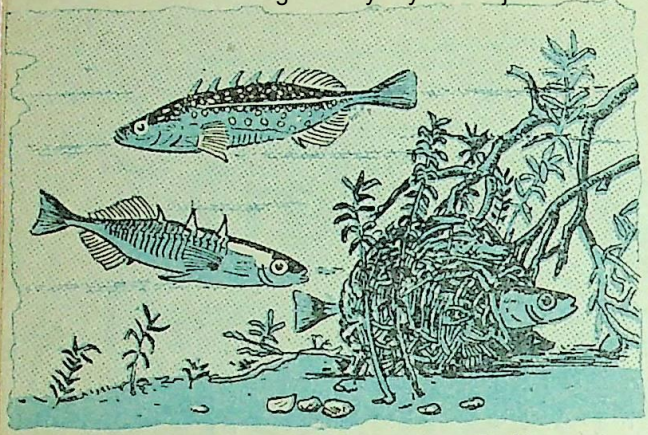

मछलियाँ···और घोंसला ? प्रकृति में वैचित्र्य की कमी है क्या ?

भीतर तैयार होते रहते हैं। ऐसी गर्म और सुरक्षित जगह उन्हें कहाँ मिलेगी ? कोई कोई मछली तो इनके भार से इतनी परेशान हो उठती है कि चल-फिर भी नहीं पाती।

कहाँ-कहाँ प्राप्य हैं

इनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ पृथक-पृथक विस्तारों में पायी जाती हैं। तीन काँटों-वाली तो सबसे अधिक संख्या में लगभग समस्त उत्तरी गोलार्द्ध के खारे तथा मीठे जलागारों में मिलती हैं। नौ काँटोंवाली भी अधिकता से मिलती हैं किन्तु उन्हें गर्म वातावरण की अपेक्षा उत्तर ध्रुवीय विस्तारों का शीतल जलवायु अधिक अनुकूल रहता है। पन्द्रह काँटोंवाली अधिकतर ब्रिटेन के सागरतटों के निकट पायी जाती हैं। ये मछलियाँ प्रायः सात इंच लम्बी होती हैं। इस परिवार की मीठे पानी में रहने-वाली मछली कुल २॥ इंच की होती है। वह उत्तरी अमरीका के बर्फीले सागर-जल में रहती है। उसकी पीठ पर पाँच काँटे होते हैं।

अल्पजीवी किन्तु तेज स्वभाव की

इन मछलियों का जीवन अति संक्षिप्त होने पर भी बहुत प्रवृत्तिमय है। ४ वर्ष होते-होते तो ये पूरा जीवन जी लेती हैं ! जिस तेजी से जीवन जीती हैं, उसी तेजी से समाप्त भी हो जाती हैं। विश्राम इनके जीवन में है ही नहीं। इनमें भी नर ही तेज स्वभाव का होता है। घोंसला बनाने, घर बसाने और शत्रुओं को मार भगाने के कार्य उसी के अधीन रहते हैं।

नर द्वारा गृह निर्माण

वसंतऋतु के लगभग इनका ऋतुकाल प्रारम्भ होता है। उस समय नर प्राणी नये रंग धारण कर लेता है। पेट का भाग चमकीला लाल तथा पीठ चटकीले नीले रंग की हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो नर महाशय विवाह की पोशाक में खिल उठे हों। मादा की साज-सज्जा इतनी भड़कीली नहीं होती। अब नर शुरुआत करता है घोंसला बनाने से। उसके लिए पानी में डूबी हुई किसी

यह नर स्टिकलबैक चक्कर लगाये जा रहा है, घोंसला बनाने के फेर में

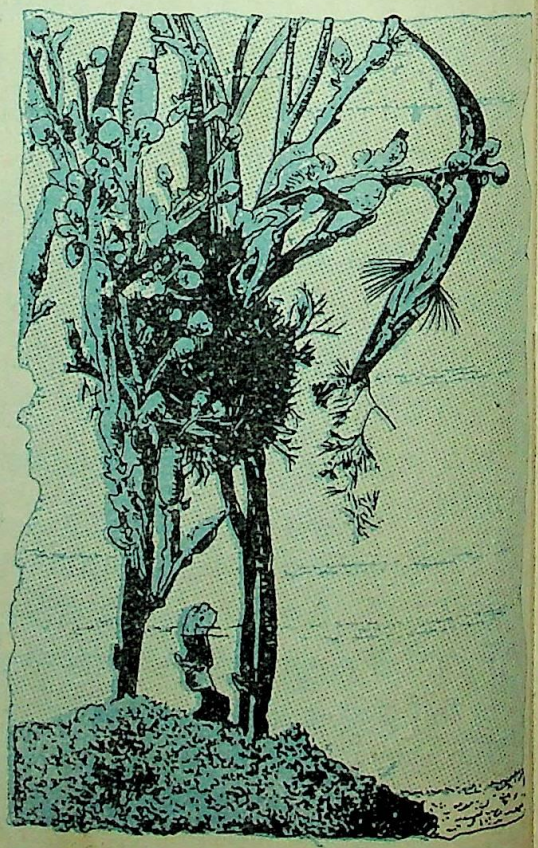

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह लाया है मादा को घेरकर, पूँछ सहलाता हुआ, प्रणय-निवेदन करता हुआ, घर बसाने के लिए

भी चट्टान की खोह जैसी सुरक्षित जगह ढूँढ़ लेता है। जगह मिल जाने पर घास-पतवार और झाड़-झंखाड़ चुन-चुनकर एकत्र कर लेता है। उनमें से लम्बे रेशे छाँटकर उनका एक गोलाकार घेरा बनाता है। बनाते-बनाते उस घेरे के चक्कर भी लगाता जाता है। उन्हीं दिनों इसके गुर्दे अत्यधिक सक्रिय हो उठते हैं और एक चिपचिपा द्रव स्रवित करते हैं। चक्कर लगाते समय उसी द्रव को धागे के रूप में उस घोंसले के चारों ओर लपेटता जाता है। घोंसला सुदृढ़ बन जाता है।

सजग गृहपालक

इस प्रकार घर तो बन गया। अब मादा की तलाश शुरू होती है। अनुकूल मादा नजर आते ही उसकी पूँछ को सहलाता हुआ, अपना प्रणय-नृत्य दिखाता हुआ और तरह-तरह से मादा को रिझाता हुआ अपने घोंसले में गृहप्रवेश करा देता है। मादा भी घोंसले में अण्डे देकर और समय पाकर नीचे के किसी सूराख से निकल जाती है। अपने घोंसले को अण्डों से भरपूर कराने के प्रयास में नर को प्रायः अनेक मादाएँ लानी पड़ती हैं। जब वह घोंसला अण्डों से भर जाता है तब उन होनेवाले माँ-विहीन बच्चों का यह बाप अपनी दोहरी जिम्मेदारी निभाता है। अण्डों की पूरी-पूरी देखभाल करता है तथा उन्हें आक्सीजन बराबर मिलती रहे इस हेतु अपने डैने फड़फड़ाकर उन पर ताजा पानी बरसाता रहता है। अण्डे तैयार हो जाने पर बच्चे निकलना प्रारम्भ हो जाता है। यह फिर भी जल्दबाजी नहीं करता। बच्चों के समर्थ हो जाने तक उनकी रक्षा, उनका भरण-पोषण करता है। इस रक्षाकाल में एक निडर, और लड़ाकू सिपाही की तरह घोंसले पर तैनात रहता है और प्रत्येक आक्रमणकारी को दूर खदेड़ता रहता है।

ट्यूबनोज

इस परिवार में एक ही जाति की ट्यूबनोज मछलियाँ हैं। दक्षिण केलिफोर्निया से अलास्का तक के विस्तार में ये सबसे अधिक पायी जाती हैं। कहीं-कहीं तो इतनी अधिक हैं कि बड़ी मछलियों का सहज और भरपूर आहार बनती रहती हैं। बड़ी मछलियों के पेट में इनका प्रायः ही पाया जाना इस कथन का समर्थन करता है। एक विज्ञप्ति के अनुसार दक्षिण केलिफोर्निया के सान्ता रोजा (Santa Rosa) टापू के किनारे-किनारे चौथाई मील व्यास के विस्तार में, ३०-३५ फुट तक की गहराई का सागर-जल इन्हीं ट्यूबनोज मछलियों से भरा हुआ था।

६॥ इंच लम्बी यह मछली स्टिकलबैक जैसी ही दिखती है। अन्तर केवल यह है कि इसकी पीठ पर काँटों की संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोंसले के लिए तिनके जुटाता हुआ नर स्टिकलबैक

२५ होती है, जबकि स्टिकलबैक में १५ से अधिक नहीं। एक अन्तर यह भी है कि यह उनकी सी तेज-मिजाज न होकर बड़ी नाजुक मिजाज होती है, इतनी कि जाल में फँसे बाद सुरक्षित मीनालय में आते-आते आतंक के मारे आधी मछलियाँ तो दम ही तोड़ देती हैं। इनका भी गृहस्थ जीवन स्टिकलबैक जैसा ही है। इनमें भी नर अपने अन्तःस्राव रेशों से घोंसला बनाता है और उसी सतर्कता से अपने अण्डों और घोंसले की रक्षा करता है।

वास्तव में ये मछलियाँ जीवन जीना खूब जानती हैं। कितना छोटा सा जीवन और उसका प्रत्येक पल कितना प्रवृत्तिमय, कितना उद्यमपूर्ण !

एक ही आवाज है
एक ही स्वर है
एक ही नारा है
काश्मीर से कन्याकुमारी तक
कच्छ से कामरूप तक
कि
आक्रमणकारी को निकाल बाहर करने के लिए
अधिक मेहनत करेंगे
अधिक पैदा करेंगे
अधिक बचत करेंगे
और
बचत का धन
राष्ट्रीय सुरक्षा योजनाओं में लगायेंगे

[सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैरिनर की शुक्रयात्रा

हरीश अग्रवाल

शुक्र ग्रह पृथ्वी के सर्वाधिक समीप है। पर अभी तक यह वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य बना हुआ था। १४ दिसम्बर, १९६२ को अमरीका का अन्तरिक्ष-यान मैरिनर–२ शुक्रग्रह के निकट से निकला था। उस समय शुक्रग्रह से उसकी दूरी लगभग २१,५०० मील थी। उसने वहाँ से जो संकेत भेजे हैं और भेज रहा है, उनसे आशा है कि वहाँ का रहस्य अब रहस्य नहीं रह जाएगा।

मैरिनर–२ अमरीका द्वारा २७ अगस्त, १९६२ को केप केनेवरल (फ्लोरिडा) से अन्तरिक्ष-अनुसंधान के लिए छोड़ा गया था। इस कार्य के लिए वह दिन इसलिए चुना गया था कि उस अवसर पर शुक्रग्रह पृथ्वी के निकटतम था। वैसी स्थिति १९ महीनों में एक बार आती है। शुक्र के निकट से निकलने तक वह यान लगभग १ करोड़ ८० लाख मील की यात्रा कर चुका था।

मैरिनर–२ का निर्माण अमरीका की जेट-प्रोपल्शन लेबोरेटरी द्वारा किया गया है। छोड़ने के समय इसके आधार का व्यास ५ फुट, ऊँचाई ९ फुट ११ इंच तथा भार ४४६ पौंड था। इसमें वैज्ञानिक उपकरणों का भार ४० पौंड है। अन्तरिक्ष में इसकी सौर बैटरी सूर्य की तरफ रहती थी ताकि उपकरणों को चलाने के लिए विद्युत शक्ति उत्पन्न की जा सके। इसका एरियल संकेत भेजने के लिए पृथ्वी की तरफ रहता था।

सूर्य की शक्ति को विद्युत में बदलने के लिए इसमें २७ वर्ग फुट के सौर-फलक (solar panels) हैं जिनमें ९,८०० सौर-बैटरियाँ हैं। इनसे १४८ से २२२ वाट तक विद्युत शक्ति प्राप्त हो सकती है। एक बैटरी द्वारा इसमें विद्युत शक्ति संचित करने की भी व्यवस्था होती है। यह संचित विद्युत उस समय काम आती है जब यान अपना मार्ग बदलता है। उस समय उसके सूर्य-फलक सूर्य की तरफ नहीं रहते।

मैरिनर में ग्रहों के ताप, विकिरण, चुम्बकीय क्षेत्र, कास्मिक धूल आदि ज्ञात करने के लिए विभिन्न उपकरण रखे गये हैं। उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं :

माइक्रोवेव रेडियोमीटर—इसके द्वारा शुक्र के धरातल का ताप तथा वायुमण्डल की जल वाष्प के बारे में विवरण प्राप्त किया गया।

इन्फ्रारेड रेडियोमीटर—यह माइक्रोवेव-रेडियोमीटर से मिलता-जुलता है। इससे भी शुक्र के ताप और वायुमण्डल के बारे में विवरण प्राप्त किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

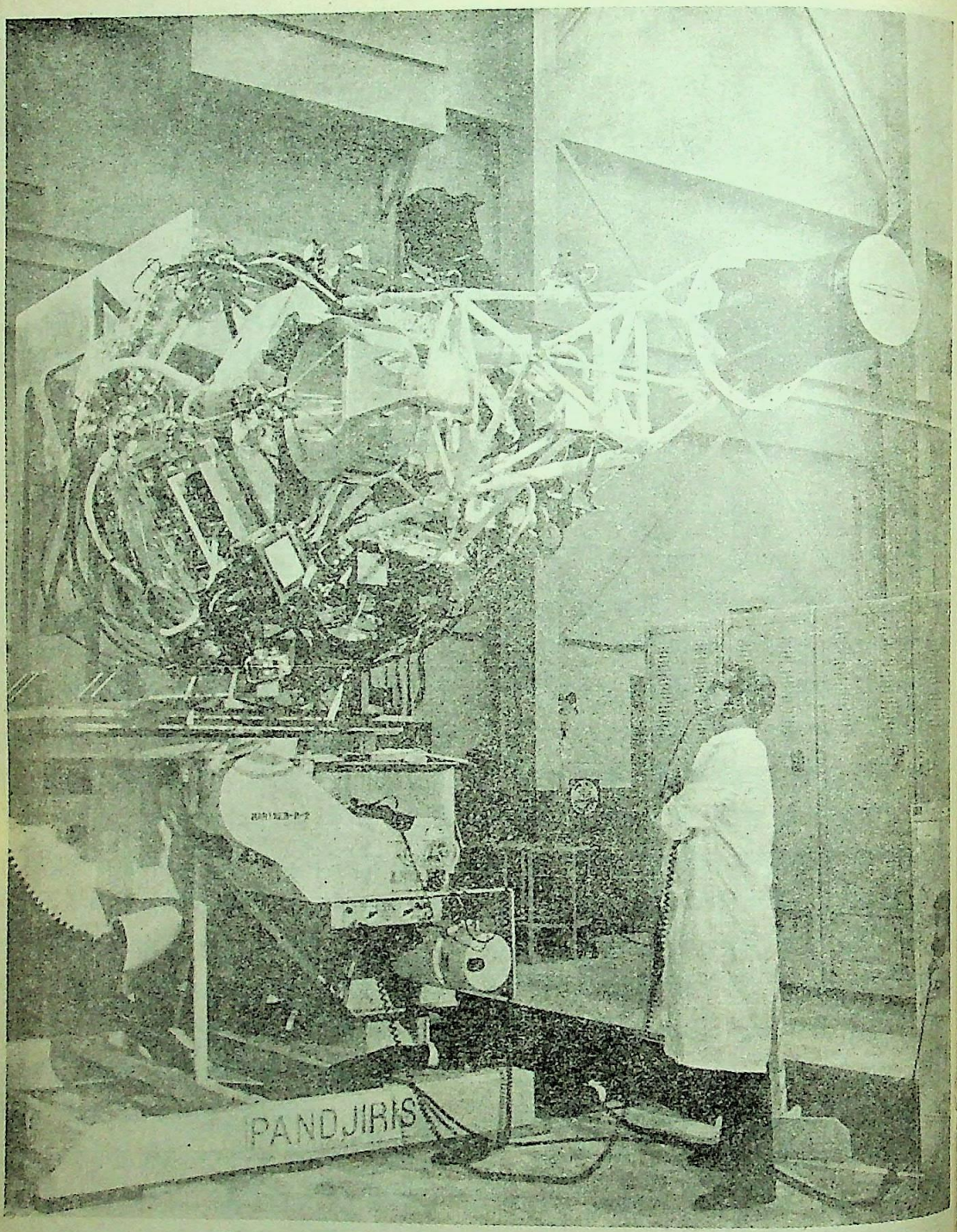

मैरिनर–२, अन्तरिक्ष-यान केलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नालॉजी, पेसाडीना की जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी में तैयार किया गया है। यह चित्र मैरिनर को अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व लिया गया था।

मैग्नेटोमीटर—यह ग्रहों की चुम्बकीय शक्ति तथा दिशा ज्ञात करने के लिए है। चुम्बकीयक्षेत्रों की जानकारी से अन्तरिक्ष-यान तथा पृथ्वी के मध्य संचार व्यवस्था कायम करने में सहायता मिलती है।

आयनीकरण कक्ष—यह कक्ष अन्तरिक्ष में तथा शुक्र के गिर्द सक्रिय कणों की संख्या और शक्ति ज्ञात करने के लिए है। अन्तरिक्ष-यात्रा में मानव की सुरक्षा के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौर प्लाज्मा परिचालक—यह सूर्य से निरन्तर आनेवाली आवेशित किरणों की सान्द्रता, विस्तार तथा शक्ति की सूचना देता है। इससे तथा मैग्नेटोमीटर से अन्तरिक्ष में सौर-तूफान और चुम्बकीय क्षेत्रों का ज्ञान स्पष्ट हो सकेगा।

कास्मिक धूल परिचालक—यह अन्तरिक्ष में व्याप्त तथा शुक्र के निकटस्थ धूल-कणों के फैलने के विस्तार, वेग तथा दिशा ज्ञात करने के लिए है। अन्य उपग्रह तथा राकेट तो पृथ्वी के निकट की कास्मिक धूल का अध्ययन कर रहे हैं परन्तु मैरिनर ही प्रथम यान है जिसने अन्तरिक्ष में इतने दूर यह अध्ययन किया है। वैज्ञानिकों को कास्मिक किरणों के स्रोत ज्ञात करने की लालसा है ही। उससे तो सारे सौरमण्डल की उत्पत्ति तथा विकास के बारे में पता लगेगा। इस प्रयोग से अन्तरिक्ष-यानों को इन कणों के भय-स्थानों का पता लग सकेगा।

मैरिनर की उड़ान-योजना इस प्रकार थी: एक द्विखण्डीय एटलस 'एजेना-बी' राकेट द्वारा मैरिनर को छोड़ा गया। एटलस के अलग होने पर शीघ्र ही 'एजेना-बी' ने मैरिनर की कक्षीय गति लगभग १८,००० मील प्रति घण्टा तक पहुँचा दी। उस समय तक यह पृथ्वी से ११५ मील दूर पहुँच चुका था। उसके बाद 'एजेना-बी' ने मैरिनर को शुक्र के प्रक्षेप-मार्ग पर करके इसकी गति करीब २५,५०० मील प्रति घण्टा कर दी। यह गति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति

मैरिनर–२ के कुछ वैज्ञानिक उपकरण इस चित्र में दिखाये गये हैं

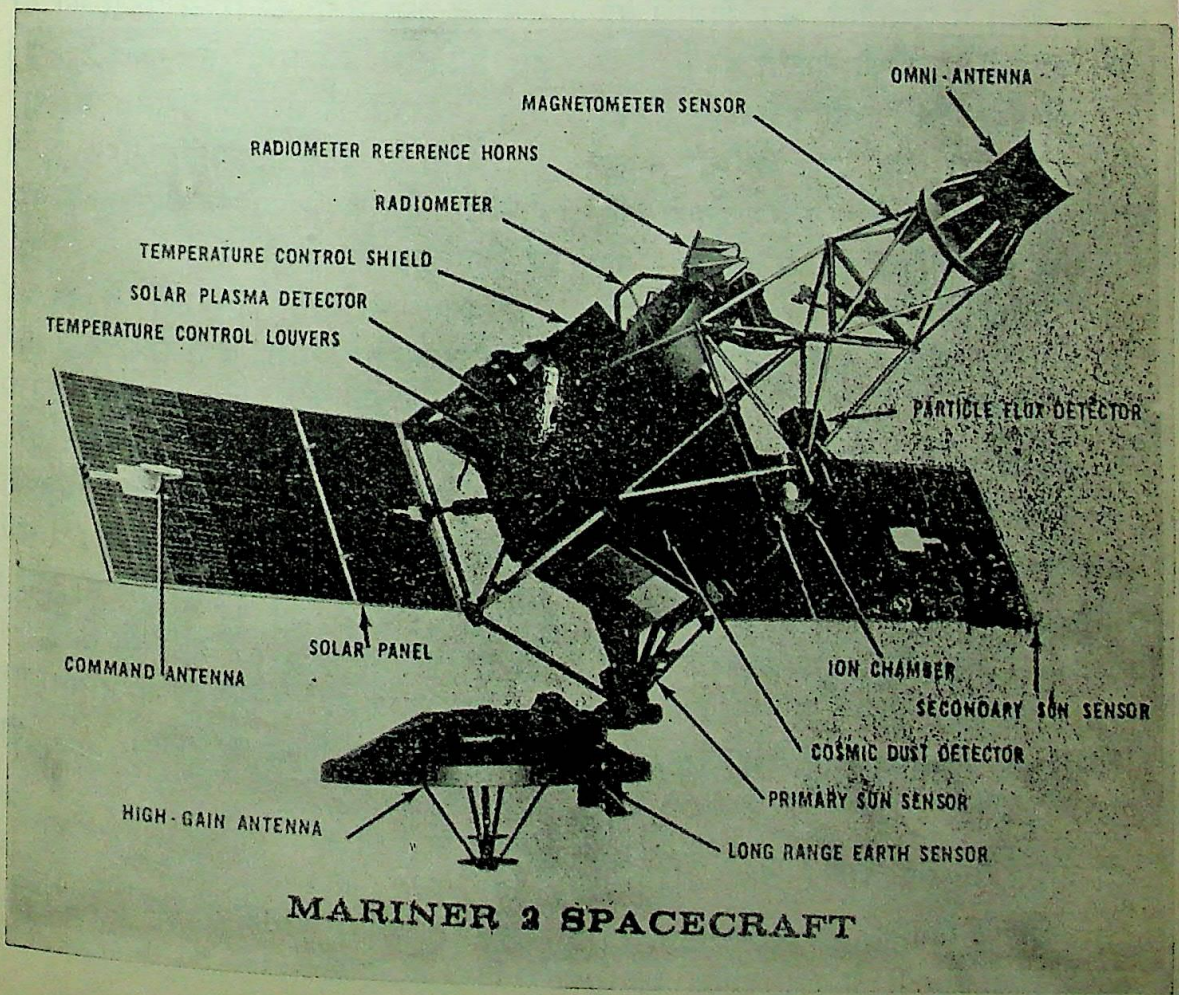

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बाहर निकलने की आवश्यक गति से करीब १,००० मील प्रति घण्टा अधिक है। वहीं पर मैरिनर और एजेना अलग हो गये।

छोड़ने के लगभग ३ दिन पश्चात् मैरिनर पृथ्वी से करीब छः लाख मील की दूरी पर था तथा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से पूर्णतः बाहर था।

पृथ्वी की सूर्य से आपेक्षिक गति करीब ६६,००० मील प्रति घण्टा है। यह गति पृथ्वी को एक वृत्ताकार कक्ष में रखने के लिए पर्याप्त है। मैरिनर की गति इस गति से करीब ७,००० मील कम थी तथा यह सूर्य के आकर्षण से बचने के लिए भी बहुत कम थी। फलतः मैरिनर सूर्य की तरफ खिंचा। केन्द्रीय तथा गोलीय वेग ने मैरिनर को एक दीर्घ-वृत्तीय कक्षा में स्थापित कर दिया। वह कक्षा शुक्र की कक्षा को काटती थी।

सूर्य की तरफ खिंचने के कारण इसकी गति बढ़ गई और यह शुक्र की ओर बढ़ता गया। शुक्र के आकर्षण के कारण इसकी गति ९१,००० मील प्रति घण्टा हो गई और यह शुक्र के निकट से निकला। सूर्य के चारों तरफ शुक्र की औसत गति ७८,३०० मील प्रति घण्टा है।

यदि मैरिनर को सीधे ही शुक्र पर भेजा जाता तो वहाँ पहुँचने पर निरीक्षण के लिए उसे केवल कुछ ही मिनट मिलते किन्तु इस खूबी से योजना बनायी गई थी कि करीब ३० मिनट तक वहाँ का विवरण प्राप्त किया जा सका।

मैरिनर का मुख्य कार्य तो उस समय समाप्त हो गया जबकि वह शुक्र के निकट से गुजरा। इसमें १०९ दिन लगे। अब यह आशा की जाती है कि दूसरे यानों—ल्यूनिक-१, पायनियर-४ तथा रेन्जर-३ की तरह मैरिनर भी सूर्य के गिर्द घूमता रहेगा। यह अपनी यात्रा के आरम्भ से ही पृथ्वी पर महत्त्वपूर्ण विवरण भेज रहा है। उन विवरणों से यह पता लगा है कि सूर्य से लगातार सौर-तूफान आते हैं जो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्रों को घेरने के लिए काफी शक्तिशाली हैं। कास्मिक धूल गहरे घने अन्तरिक्ष की अपेक्षा पृथ्वी के निकट १००० गुना अधिक है। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्रह अपने समीप इस कास्मिक धूल को एकत्र करते हैं। यह भी ज्ञात किया गया है कि विभिन्न शक्तियों के चुम्बकीय क्षेत्र लगभग प्रत्येक स्थान पर स्थित हैं तथा घना अन्तरिक्ष पृथ्वी को घेरे हुए विकिरण कटिबन्धों से मुक्त है। इन प्राप्त विवरणों का अध्ययन किया जा रहा है। आशा है इनसे उपयोगी तथ्य प्राप्त होंगे और हम अपने पड़ोसी शुक्र ग्रह के बारे में बहुत कुछ जान सकेंगे।

इससे भी आगे अमरीका में १९६४ के आरम्भ में मंगल तथा शुक्र ग्रहों पर मैरिनर छोड़ने की एक श्रृंखला-योजना बन रही है। वह नया मैरिनर इससे तीन गुना भारी रहेगा तथा उसमें स्पष्ट विवरण लेने के लिए अधिक उपकरण होंगे। उसमें टेलीविजन कैमरा तथा रेडियोमीटर भी होंगे। वह मैरिनर उपकरणों को ग्रहों की सतह पर उतारेगा ताकि वहाँ की जीवन-सम्भावना पर विस्तृत अध्ययन किया जा सके। ●

दो आँखें, ५००० हाथ !

सोवियत वैज्ञानिक एक ऐसे कम्प्यूटर-यंत्र को अन्तिम रूप देने में संलग्न हैं जिसके द्वारा एक व्यक्ति अकेला ही बड़ी से बड़ी सीमेण्ट फैक्टरी अथवा किसी भी उद्योग-संस्थान का निरीक्षण कर सकेगा। उक्त यंत्र एक सेकण्ड में ५००० कार्य सम्पन्न करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

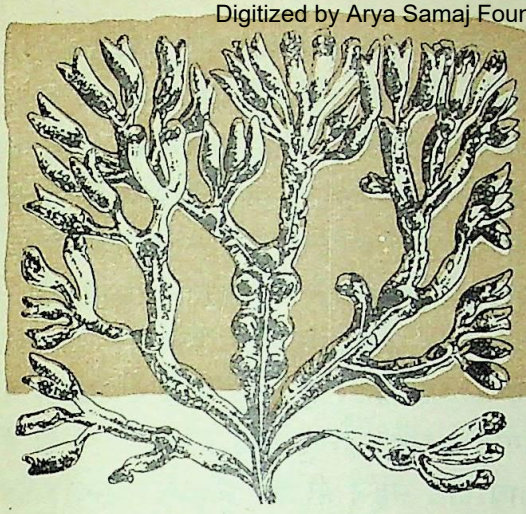

आयोडीन

चन्द्रकुमार

अधिक समय नहीं हुआ जब प्रत्येक सम्पन्न और समझदार घराने में छोटी-मोटी घरेलू दवाओं की प्रथम पंक्ति में टिंचर-आयोडीन की शीशी अनिवार्यतः रहती थी। 'चोट' शब्द के साथ 'टिंचर' शब्द बराबर जुड़ा रहता था। आज चाहे आयोडीन को कीटाणुरोधक (antiseptic) दवाओं में पिछड़ा हुआ मान लें, शरीर-रसायन (bodychemistry) में तो इसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

बात पुरानी नहीं

डेढ़ सौ वर्ष का समय अधिक नहीं कहा जा सकता जब सन् १८११ में प्रथम बार आयोडीन से भेंट हुई थी। नेपोलियन प्रथम के शासनकाल में युद्ध के धूम-धड़ाकों से फ्रांस का वायुमण्डल प्रकम्पित था। देश को अधिक से अधिक विस्फोटक सामग्री देते रहने में फ्रांस के वैज्ञानिकों और उत्पादकों ने एड़ी-चोटी का जोर लगा रखा था। उन्हीं में बर्नार्ड कोर्टाय (Bernard Courtois) भी एक था। समुद्री घास-पतवार (sea-weeds) से शोरे (nitre) जैसा पदार्थ प्राप्त करने के प्रयोग कर रहा था ताकि उसे विस्फोट-मिश्रण बनाने में काम लिया जा सके। उसने देखा कि विविध घोलों से भरे हुए बड़े-बड़े ताँबे के पात्रों की बाहरी सतह पर एक विचित्र प्रकार का जंग (rust) लग रहा है। उसने जिज्ञासावश खुरचकर उस पर गंधक के अम्ल की क्रिया कराई तो वह यह देखकर चकित रह गया कि एक काला सा पदार्थ अलग पड़ गया। उसे गर्म किया तो बैंगनी रंग की घनी वाष्प के रूप में उठकर वह ऊपर के पात्र की ठण्डी सतह पर जमकर पत्रों (flakes) के रूप में एकत्र हो गया। उस समय उसने उस अनजाने पदार्थ का नाम एक्स (X) रखकर अपने एक केमिस्ट मित्र के पास परीक्षणार्थ भेज दिया। तीन-चार वर्ष और बीत गए किन्तु सन्तोषप्रद अनुसंधान न हो सका।

सन् १८१५ में जे. एल. गे लुसेक (J. L. Gay Lussac) ने आयोडीन को एक तत्त्व के रूप में घोषित किया। इसकी वाष्प का बैंगनी रंग होने के कारण इसे ग्रीक शब्द *iodes* अर्थात् बैंगनी से Iodine नाम दिया। चार वर्ष पश्चात् एडिनबर्ग के डा. एन्ड्रयू फाइफ (Andrew Fyfe) ने इसका एक और रहस्य ज्ञात कर लिया। उन्होंने घोषित किया कि आयोडीन मानव शरीर के लिए भी एक अत्यावश्यक तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसकी सम्पुष्टि दूसरे ही वर्ष १८२० में स्विस चिकित्सक डा. कोयण्डेट ने इस प्रकार की कि उन्होंने बढ़ी हुई थायराइड-ग्रन्थि अर्थात् गलगण्ड (goitre) के रोगियों को आयोडीन की अतिरिक्त मात्रा देकर रोगमुक्त कर दिया। डा. कोयण्डेट का वह प्रयोग एक प्रकार से बहुत ही अग्रिम रहा क्योंकि पूरी एक शताब्दी बीत गई लेकिन उनकी उस चिकित्सा को मान्यता नहीं मिली। आज उनकी उस चिकित्सा को साभार स्वीकार किया जा रहा है। इसकी कीटाणुरोधक विशेषता की विधिवत् घोषणा १८७३ में सी. जे. डेविड ने की थी। वैसे इसी प्रयोजन के लिए इसका उपयोग उससे ५०-६० वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था।

स्रोत और गुणावगुण

आयोडीन स्वतन्त्र रूप से कहीं भी उपलब्ध नहीं। आयोडाइड के रूप में यह सागर जल तथा वानस्पतिक और जैविक पदार्थों में सूक्ष्म रूप में रहता है। सागर जल में ८००० भाग क्लोराइड में १ भाग आयोडाइड रहता है। समुद्री घास-पतवार तथा प्राकृतिक खारे झरनों में आयोडाइड अधिकता से होता है। औद्योगिक दृष्टि से आयोडाइड का सबसे बड़ा स्रोत दक्षिणी अमरीका के चिली प्रदेश के विश्व प्रसिद्ध शोरे के आगार हैं। पृथ्वी की सतहों में १० प्रतिशत आयोडीन होने का अनुमान है। अधिकता से मिलनेवाले प्राकृतिक तत्त्वों में क्रमानुसार आयोडीन का स्थान २८वाँ है।

हैलोजन-परिवार का सदस्य-आयोडीन

आयोडीन का परमाणु भार १२६·९१ है। इसके शुष्क पत्र ११४°C पर द्रवित हो जाते हैं। उस द्रव का क्वथनांक १८३°C है। घन रूप से इसका वाष्पीकरण सामान्य ताप पर ही हो जाता है। पानी में यह बहुत कम घुलनशील है। कुछ जलयुक्त घोलों में इसकी घुलनशीलता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ कार्बन टेट्राक्लोराइड में पानी की अपेक्षा यह ८५ गुना अधिक घुलनशील है। पानी और अल्कोहल में आयोडीन के घोल का रंग कत्थई रहता है जबकि अन्य घोलों में बैंगनी। अनेक धातु तथा अधातु पदार्थों से आयोडीन सहज ही संयुक्त होकर आयोडाइड बनाता है। आक्सीकरण की क्रिया में अपने परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा यह अत्यधिक सुस्त है। ब्रोमाइड, क्लोराइड और फ्लोराइड की अपेक्षा आयोडाइड बनने की क्रिया में कम ताप उत्पन्न होता है। आयोडीन का एक और स्वभाव अति विचित्र है। प्रयोग करते समय हाथों पर तथा कागज या कपड़े पर यह ऐसा कत्थई दाग छोड़ जाता है जो छुड़ाए नहीं छूटता। उस हालत में फोटोग्राफी में काम आनेवाले हाइपो सल्यूशन अर्थात् सोडियम थायोसल्फेट की सहायता लेनी पड़ती है। इसके संयोग से आयोडीन एक रंगहीन यौगिक बना लेता है और यों वह दाग छूट जाता है।

नमक से निकट सम्बन्ध

हमारे दैनिक प्रयोग में आनेवाला नमक भी आयोडीन का एक प्रमुख स्रोत है।

सागरतट की घास-पतवार भी आयोडीन का एक बड़ा स्रोत है

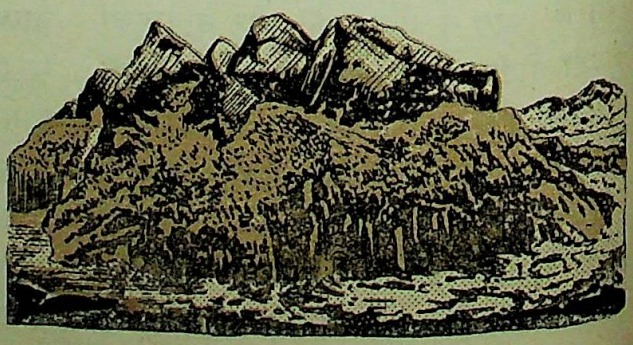

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमक, मूल रूप में मटमैला तथा बदरंग होता है। उस अवस्था में उसमें आयोडीन भरपूर रहता है। नमक को खाने के योग्य सफेद बनाने के लिए रासायनिक विधियों द्वारा शोधित किया जाता है। नमक के सफेद होते-होते काफी आयोडीन निकल जाता है, क्योंकि उसे ६००°F ताप से गुजरना पड़ता है। अतः खाने के साथ हमें आयोडीन की कमी न रहे इस हेतु उस शोधित नमक (refined salt) में अति अल्प मात्रा आयोडीन की मिलानी पड़ती है। सामान्यतः पोटैशियम आयोडाइड एक शतांश के भी १००वें भाग के अनुपात से नमक में मिलाया जाता है। ऐसे नमक को आयोडाइज्ड नमक (iodized salt) कहते हैं। आर्द्र-गर्म जलवायु में आयोडाइड के स्थान पर आयोडेट मिलाया जाता है।

नमक के शोधन में आयोडीन उड़ता है या नहीं इसका भी एक मनोरंजक इतिहास है। १९२६ में अमरीका के मिशिगन नगर में इसी विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उसी सिलसिले में एक अनुसंधानक-दल एक नमक की रिफाइनरी में पहुँचा। उस दल में एक सदस्य चमकीला सफेद और माड़ी लगा सख्त कालर लगाए हुए थे। जब एक तंग गली से निकलने लगे तो बाहर आते-आते उनका कालर नीला पड़ गया। आश्चर्य-सहित उस रहस्य की खोज की गई तो ज्ञात हुआ कि टंकियों से उठती हुई आयोडीन वाष्प ने अपना प्रभाव दिखा दिया था! उससे आगे तो अनुसंधान की आवश्यकता ही न रही!

शरीर-रसायन में प्रमुख भाग

प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि शरीर-रसायन के लिए आयोडीन अत्यन्त आवश्यक है। एक औसत व्यक्ति के लिए ०·१५ से

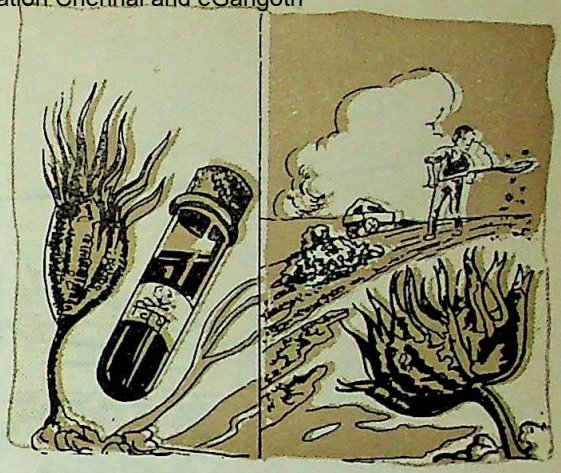

अनेक उर्वरक पदार्थों के साथ आयोडीन भी समुद्र से प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है

०·३० मिलीग्राम की दैनिक मात्रा आवश्यक है। किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में आयोडीन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। विविध खाद्य पदार्थों में आयोडीन की मात्रा अनिश्चित रहती है तथा इसकी कमी भी रह सकती है। अतः उपरोक्त अवस्थाओं में आयोडाइज्ड नमक का प्रयोग विशेष आवश्यक हो जाता है। शरीर के लिए आवश्यक अन्य तत्त्वों से विपरीत, इसकी विशेषता यह है कि प्राकृतिक रूप में इसका समस्थानिक प्राप्य ही नहीं। पर इसका रेडियो समस्थानिक तैयार कर लिया गया है जिसका परमाणु भार १३१ है और वह सुचारु रूप से उपयोग में आ रहा है।

आयोडीन की धर-पकड़

शरीर की थाइरायड ग्रन्थि के लिए भी आयोडीन अत्यन्त आवश्यक है। थाइरायड ग्रन्थि के स्राव; थाइरायड हारमोन अर्थात् थाइराक्सिन (thyroxin) का निर्माण इसी से सम्भव है। शरीर वृद्धि में थाइरायड ग्रन्थि का प्रमुख भाग रहता है। शरीर की कोशिकाओं की कार्य-प्रणाली का नियमन इसी के द्वारा होता है। आयोडीन का प्रभाव हमारे शरीर पर कितना विलक्षण है, यह इससे समझा जा सकता है कि हमारे रक्त में इसकी सान्द्रता एक शतांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लैक नाइट

व्हिस्की

असली माल्ट व्हिस्कियों का श्रेष्ठ १००% शुद्ध मिश्रण

डायर मीकिन ब्रूयरीज़ लि०

स्थापित १८५५

सोलन ब्रेयूरी . कसौली डिस्टिलरी . लखनऊ डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रेयूरी तथा एलाइड इन्डस्ट्रीज़ (उ. प्र.)
सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स:- मै० स्पेन्सर एन्ड कं० लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ४० हजारवें भाग जितनी सूक्ष्म रहती है। यह अभी तक एक रहस्य ही बना हुआ है कि किस प्रकार थाइराक्सिन बनाने के लिए थाइरायड ग्रन्थि में आते ही आयोडीन की सान्द्रता २५ गुना बढ़ जाती है! इस चमत्कारिक क्रिया को आयोडीन की धर-पकड़ (iodine trapping) कहते हैं।

आयोडीन न हो तो थाइरायड असहाय

आयोडीन की इस धर-पकड़ में कभी-कभी चूक भी हो जाती है। तब थाइरायड ग्रन्थि असहाय हो जाती है। आयोडीन के अभाव में थाइराक्सिन बनाते-बनाते यह थक जाती है, बीमार हो जाती है और तब हमारा गला सूज आता है। उस रोग को गलगण्ड (goitre) कहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में यह खतरनाक प्रतीत नहीं होता किन्तु असावधान रहने पर यह रोग श्वसन-क्रिया में बाधाएँ बढ़ाता हुआ अधिक विकृत होने पर घातक भी सिद्ध हो सकता है। इस रोग के निवारणार्थ आयोडीन आवश्यक है। यह तथ्य १९१० और १९२० के मध्य किये गये अनुसन्धानों के पश्चात् ही प्रस्तुत किया गया था।

इस चिकित्सा का श्रेय डा. डेविड मैरीन (Dr. David Marine) को है। जिन दिनों वे ओहायो (Ohio) विश्व-विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों गलगण्ड का रोग फैला हुआ था। उन्होंने सर्वप्रथम इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अपने साथियों सहित इसके अध्ययन में जुट गए। उनके साथियों में डा. ओ. पी. किम्बाल (Dr. O. P. Kimball) का नाम उल्लेख-नीय है। दोनों ने किशोरवयस्क छात्रों का निरीक्षण प्रारम्भ किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऐसे रोगियों को प्रारम्भिक अवस्था में अहानिकर आयोडीनयुक्त पीने का पानी देने से लाभ हो सकता है।

अन्य चिकित्सकों ने भी इस दिशा में प्रयोग प्रारम्भ किये। उन्होंने सीधे ही थाइ-राक्सिन का विश्लेषण किया और इस भिन्न प्रकार से भी थाइराक्सिन से आयोडीन के सम्बन्ध का समर्थन किया।

खाद्य-चुनाव में सावधानी

नित्य प्रयोग की किन खाद्य वस्तुओं से शरीर को आवश्यक आयोडीन मिल सकता है? यों तो फल, सब्जियाँ और कुछ अनाज भी आयोडीन देने में समर्थ हैं किन्तु आवश्यक है कि वे आयोडीनयुक्त मिट्टी-खाद में ही उपजाए जाएँ। ऐसी गायों का दूध भी आयोडीन-सम्पन्न होगा जो अपने चारे में आयोडीन का मिश्रण पाती होंगी अथवा आयोडीनयुक्त चरागाहों में ही चरती होंगी। यह ऊपर कह ही आए हैं कि समुद्री घास-पतवार में आयोडीन प्रचुर मात्रा में होता है। इन्हीं में पौधे तथा मछलियाँ भी सम्मिलित हैं। अतः जापान-निवासी जो अधिकतर इन्हीं का सेवन करते हैं, गलगण्ड के भय से सर्वथा मुक्त रहते हैं।

स्पष्ट है कि आयोडीन हमारे शरीर-रसायन के लिए अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व है और हमें अपने शारीरिक विकास के लिए खाद्य-चुनाव में, विशेषतः नमक के उपयोग में पूरी सावधानी रखनी चाहिए। ●

मशीन से पूछिए

निकट भविष्य में हवाई अड्डों पर रखे जानेवाले कम्प्यूटर यंत्र आपको यह बता सकेंगे कि आनेवाले हवाई जहाज में आपको जगह मिल सकेगी या नहीं; उसमें नहीं तो किस आनेवाले में मिलेगी, जहाज कितनी दूरी पर है, कितनी देर में आ पाएगा, आदि। दक्षिण जर्मनी का एक प्रसिद्ध कारखाना ऐसे कम्प्यूटर यंत्र का उत्पादन प्रारम्भ कर रहा है। इसके प्राथमिक प्रयोग सफल रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलबुल-बुलबुल

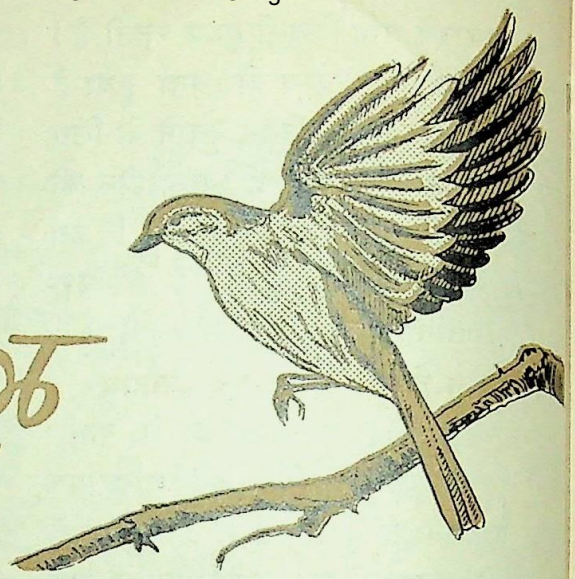

सुरेश सिंह

उर्दू काव्य-प्रेमियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनकी गजलों में चहकनेवाली बुलबुल हमारे देश का पक्षी नहीं है। पिंजड़े में कैद होकर भले ही वह हमारे यहाँ आती हो लेकिन अपनी राजी से अपने वतन ईरान (फारस) के गुलिस्तानों को छोड़कर वह यहाँ के बाग-बगीचों का रुख नहीं करती। एक प्रकार से हमीं ने उसे फारसी साहित्य से मांगकर अपने उर्दू काव्योद्यान में ला छोड़ा है। इस बुलबुल ने भी हंसों की तरह हमारे देश को नहीं अपनाया। यही कारण है कि हम अपने यहाँ की अन्य पचासों जाति की बुलबुलों में फारस की बुलबुल को आसानी से नहीं पाते। उसकी जाति ही भिन्न है।

बुलबुल को अंग्रेजी में नाइटिंगेल (Nightingale) कहते हैं। देशों के अनुसार इसे तीन श्रेणियों में रख सकते हैं—पश्चिमी, पूर्वीय तथा फारसी। फारसी बुलबुल को 'बुलबुल हजार-दास्तां' भी कहते हैं। इनमें नर-मादा बहुत कुछ समान ही होते हैं। अन्तर केवल पूँछ की लम्बाई का रहता है।

कलकत्ते के चिड़िया-बाजारों में कभी-कभी यह नजर आ जाती है। तब इसकी कीमत बहुत बढ़ जाती है। कभी-कभी तो सैकड़ों रुपये तक बोली पहुँच जाती है। बोली बोलनेवाला इसके गुणों को पहिचानता है, इसकी मीठी बोली पर वारी जाता है।

तरह-तरह की बुलबुलें

हमारे देश में कम से कम ५०-५५ जाति की बुलबुलें मिलेंगी। उनमें से चुनकर ८ किस्म की बुलबुलों से आपका परिचय कराएँ। उनके नाम हैं: (१) गुलदुम तौरवी, (२) गुलदुम स्याहा, (३) गुलदुम बर्रहा, (४) बनकरा, (५) कांगड़ा, (६) सिपाही, (७) जर्द तथा (८) मछरिया।

इन सब में **गुलदुम बुलबुलें** बहुत प्रसिद्ध हैं। ये अपने द्वन्द्व-कौशल के कारण ही अधिकतर पाली जाती हैं। पूँछ के नीचे के लाल परों के कारण इन्हें यह प्यारा नाम दिया गया है। इनमें भी किसी प्रदेश में स्याहा लोकप्रिय है तो किसी में गंगा पार की तौरवी। तौरवी का सिर, ठुड्डी और कण्ठ, गहरा काला तथा गर्दन, पीठ, सीना और डैने भूरे रंग के, सफेद किनारीदार होते हैं। जड़ की ओर तो पूंछ भूरी होती है लेकिन सिरे तक आते-आते स्याह हो जाती है। पेट का रंग सफेदी लिए हुए होता है। पूँछ के नीचे के पर लाल होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलदुम स्याहा सादा बुलबुल होती है। कान के पास इसके पर स्लेटी रंग के होते हैं। सिर की स्याही गर्दन से आगे बढ़कर कुछ भाग पीठ का भी घेर लेती है। नीचे की ओर का काला रंग सीने तक फैल जाता है। शेष निचला भाग, लाल पूंछ को छोड़कर स्लेटी भूरा होता है।

बर्रहा पंजाब की बुलबुल है। यह तौरवी और स्याहा से कुछ बड़ी होती है। इसके सिर और गर्दन की स्याही कम ही होती है। ऊपरी हिस्से में गुद्दी से पहले और नीचे सीने तक पहुँचते-पहुँचते रंगत स्याह से कलछौंह होती जाती है। कान के नजदीक वाले पर गहरे कत्थई और पीठ भूरे रंग की होती है।

ये तीनों गुलदुम बुलबुलें ८-९ इंच की होती हैं। इनमें स्याहा और तौरवी तो प्रायः सभी जगह मिल जाती हैं। बर्रहा पंजाब से आगे नहीं जाती और उत्तर प्रदेश से कुछ ही आगे तक आती है।

बनकरा बुलबुल को धुर काली बुलबुल भी कहते हैं। वैसे यह धुर काले रंग की नहीं होती। दूर से यह काली जरूर दिखायी पड़ती है। यह इसलिए कि इसका ऊपर का रंग गहरा स्लेटी और पूंछ तथा डैने गहरे कत्थई होते हैं। इसके सिर और पंखों पर भी स्याही रहती है। पेट और पूंछ के नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। यह गुलदुम बुलबुल से कुछ बड़ी, १० इंच तक की होती है। यह हिमालय के विस्तारों में ९००० फुट की ऊँचाई पर मिलती है।

कांगड़ा बुलबुल पहाड़ी है। पहाड़ों में यह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर मिलती है। यह आठ इंच की होती है। इसका सिर और टेढ़ी चोटी भूरी होती है तथा गाल, ठुड्डी और गर्दन का रंग स्याह। गाल के निकट इसके पर सफेद होते हैं। शरीर का ऊपरी भाग, डैने और पूंछ भूरी होती है। पूंछ सिरे की ओर काली होती जाती है। पूंछ के बीच के दो परों को छोड़कर सब परों के सिरे सफेद रहते हैं। शरीर का निचला हिस्सा हलका मटमैला होता है। पेट के पास कुछ सफेदी रहती है। पूंछ का निचला भाग गंधक जैसा पीला होता है।

सिपाही बुलबुल को उसके लाल गल-मुच्छों के कारण सिपाही कहते हैं। इसने शक्लोसूरत भी सुन्दर पाई है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बुलबुल है जो तराई के मैदानों से लेकर मध्य प्रदेश तक फैली हुई है। इसके शरीर का ऊपरी भाग तथा डैने मटमैले भूरे रंग के और निचला हिस्सा सफेद होता है। पूंछ गहरी भूरी होती है और कुछ परों के सिरे सफेद होते हैं। पूंछ का निचला भाग गुलदुम बुलबुल की तरह लाल रहता है। गर्दन की बगल का भाग और सीने का अर्द्धचन्द्राकार चिह्न कलछौंहा रहता है। माथा, चोटी और गाल पर मूँछों जैसे काले डोरे रहते हैं। गाल का कुछ भाग सफेद भी होता है। आँख के पास का भाग लाल होता है। इसे गाँवों में कांगड़ा भी कहते हैं।

जर्द बुलबुल तो जैसा नाम से ही स्पष्ट है, पीले रंग का पक्षी है। कद में यह ७॥ इंच से बड़ी नहीं होती। यह जंगलों में रहनेवाली बुलबुल है। इसे हिमालय के प्रदेशों में ४००० फुट की ऊँचाई तक और मध्य प्रदेश के पठारों तथा जंगली विस्तारों में देखा जा सकता है। इसका निचला हिस्सा पीला, पूंछ और डैने भूरे तथा सिर, ठुड्डी और गर्दन स्याह होती है।

मछरिया बुलबुल उत्तर प्रदेश से लेकर दक्षिण तक पहुँचती है। इसकी आँख के ऊपरी भाग में मछलियों जैसी सफेद पट्टियाँ होती हैं। उन्हीं से इसे यह नाम दिया गया है। यह भी आकार में ८ इंच की होती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग धूमिल-हरा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर स्लेटी और पूंछ तथा डैने भूरे होते हैं। शरीर का निचला भाग हलका पीलापन लिये हुए स्लेटी सा रहता है। पूंछ का निचला भाग पीला होता है।

बुलबुल को उसके द्वन्द्व-कौशल का आनन्द लेने के लिए ही पालते हैं

बुलबुलों की जीवन प्रणाली

बुलबुल बारहमासा पक्षी है। यह हमारे देश में ही स्थान-परिवर्तन भले ही कर ले किन्तु परदेशी परिव्राजक पक्षियों की तरह देश से बाहर नहीं जाती। फल ही इनका मुख्य भोजन है। कभी-कभी फलों के अतिरिक्त कीड़े-मकोड़े चुगते हुए भी नजर आ जाती हैं। इनके नन्हे पाँव इनकी पहिचान में बड़े सहायक होते हैं। सिर की चोटी ही इन पक्षियों की विशेषता है। किसी-किसी बुलबुल की चोटी इतनी छोटी होती है कि बस, सिर से चिपकी हुई नजर आती है। ऐसा नहीं होता कि चोटी हो ही नहीं।

बुलबुल गाती नहीं, चहकती जरूर है। इसके चहकने को गाँव के लोग कुरचना कहते हैं। इसका चहकना भला ही लगता है, चाहे उसमें कोयल की कूक का रस और पपीहे की पीड़ा न हो। इन्हें लोग चहकने के कारण नहीं, बल्कि इनके द्वन्द्व-कौशल के कारण पालते हैं। यह शौक इतना गहरा समाया हुआ है कि हमारे देश में इतने बड़े-बड़े परिवर्तन हो गए मगर बुलबुल, तीतर और बटेरें लड़ाने के शौकीनों से आप को कोई कोना खाली न मिलेगा। जाड़ा आया नहीं कि मशहूर बुलबुलबाजों में चहल-पहल शुरू हो गई। कहीं तो पिंजड़े (जिन्हें 'चक्कस' कहते हैं) साफ हो रहे हैं, कहीं बुल-बुलों के सौदे हो रहे हैं। चक्कस में बन्द बुलबुल के शरीर के गिर्द कपड़े की एक पट्टी लपेटकर उसमें धागा पिरोकर उसके पाँव बाँधे रहते हैं। कहीं बुलबुल अपने चमन को उड़ न जाए!

गुलदुम बुलबुलें लड़ने में बड़ी तेज होती हैं। शौकीनों द्वारा अधिकतर ये ही पाली जाती हैं। कुछ दिनों तो उस्ताद के यहाँ इनकी तालीम चलती है। पक्की हो जाने पर द्वन्द्व कराने की शर्तें लगायी जाती हैं। सब कुछ तय हो जाने पर दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को मैदान में उतारा जाता है। लड़ाने से पहले इन्हें किंचित् भूखा अवश्य रखा जाता है। दोनों के मैदान में उतरते ही पहले बीच में एक कटोरी शरबत रख देते हैं। दोनों भूखी बुलबुलों को बूंद-दो-बूंद चखाकर उनकी भूख को मानो और भी तेज कर देते हैं। तभी एकाएक कटोरी गायब कर देते हैं। दोनों एक दूसरे को कटोरी-चोर समझकर उलझ पड़ती हैं और जी-जान से लड़ती हैं। एक बार हार जाने पर काफी समय तक उसकी हिम्मत दुबारा भिड़ने की नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगातार दो-तीन विजय प्राप्त हो जाने पर विजयी बुलबुल की प्रसिद्धि फैल जाती है। अन्ततः अच्छी लड़ाकू बुलबुलें रखकर बाकी सब छोड़ दी जाती हैं।

अपने अण्डों के बारे में बुलबुलों को कम परेशान नहीं होना पड़ता। सांप, नेवले आदि इनके अण्डों को चट करते ही रहते हैं। फलतः वर्ष में कई बार इन्हें अण्डे देने पड़ते हैं। ठिगने पेड़, झाड़ी, घास या खर के ढेरों में ये अपने घोंसले बनाती हैं लेकिन वहाँ तक इनके दुश्मन सहज ही पहुँच जाते हैं। कभी-कभी तो अण्डों को बचाने में स्वयं इन्हें भी उनका शिकार हो जाना पड़ता है। ये एक बार में २-३ से अधिक अण्डे नहीं देतीं। इनके अण्डे गुलाबी या हलके बैंगनी रंग के होते हैं।

घोंसला बनाने का इनका ढंग काफी दिलचस्प होता है। अण्डे देने से ३-४ दिन पहले नर-मादा मिलकर घोंसला बनाने का उद्योग करते हैं। नन्हीं, पतली टहनियाँ, घास-फूस और पत्तियाँ एकत्र करते हैं। मकड़ी के जाले को रस्सीनुमा धागा बना लेते हैं जो घोंसले को मजबूती के लिए बाँधने के काम आता है। घोंसला बनाने के लिए कोई दो-फंकी नीची डाल चुन लेते हैं। उस पर पहले टहनियां बेतरतीब फैला देते हैं। फिर उस पर घास-फूस बिछाकर बारी-बारी से सीना दबा-दबाकर उसे कटोरीनुमा बनाते हैं। जब तक एक साथी अन्य सामान जुटाने को बाहर रहता है, दूसरा साथी घोंसले को बनाने में लगा रहता है। एक के आने पर दूसरा बाहर चला जाता है। यों, दो दिन में घोंसला तैयार हो जाता है। घोंसले की गहराई ३-४ इंच से अधिक नहीं रहती। अतः उसके अन्दर बैठकर अण्डे सेती हुई बुलबुल की पूंछ बाहर दिखती रहती है। जब-जब इनके अण्डे दूसरों के शिकार बन जाते हैं, तब-तब इन्हें अण्डे देने के समय नये ही घोंसले बनाने पड़ते हैं।

हमारी इन प्यारी बुलबुलों को इस तरह कदम-कदम पर परेशानी की जिन्दगी गुजारते हुए और उजड़ी दुनिया को पुनः-पुनः बसाते हुए देखकर ही शायद किसी शायर ने कहा है :

कहता है कौन नालये बुलबुल को बेअसर ?
पर्दों में गुल के लाख जिगर चाक हो गए।

कोयले से नये उर्वरक और रासायनिक खादें भी

कनाडा के डा. एन वर्कोविट्ज और अमरीका के डा. राजर डब्ल्यू यंग के सम्मिलित प्रयासों द्वारा कोयले से ऐसे पदार्थ प्राप्त करने में सफलता मिली है जो बंजर भूमि को उर्वर बना सकेंगे। प्रयोगस्वरूप 'लिगनाइट' नामक नर्म कोयले से उक्त पदार्थ प्राप्त किया गया है। इस प्रकार प्राप्त रासायनिक उर्वरक में ह्यूमिक एसिड काफी मात्रा में पाया गया है। 'ह्यूमस' वह तत्त्व है जो उर्वरा भूमि की संरचना एक प्रमुख भाग है। इस पर आगे भी अनुसन्धान करते हुए डा. यंग का कथन है कि इस नये पदार्थ में अमोनिया मिलाकर भूमि की जुताई-बुवाई करने से भूमि की पोषण-क्षमता और भी बढ़ जाएगी। डा. बर्कोविट्ज ने भी स्पष्ट किया है कि इस पदार्थ में निहित ह्यूमिक अम्ल अन्य अनेक उपयोगी कार्यों में आ सकता है। मुख्यतः उसका उपयोग चमड़ा पकाने में काम आनेवाले मसालों में, भूमि-छिद्रण (earth drilling) के दौरान में आनेवाली सख्त चट्टानों को नर्म करने में तथा आणविक भट्ठियों के लिए उपयोगी कृत्रिम ग्रेफाइट बनाने में किया जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन जलवायु

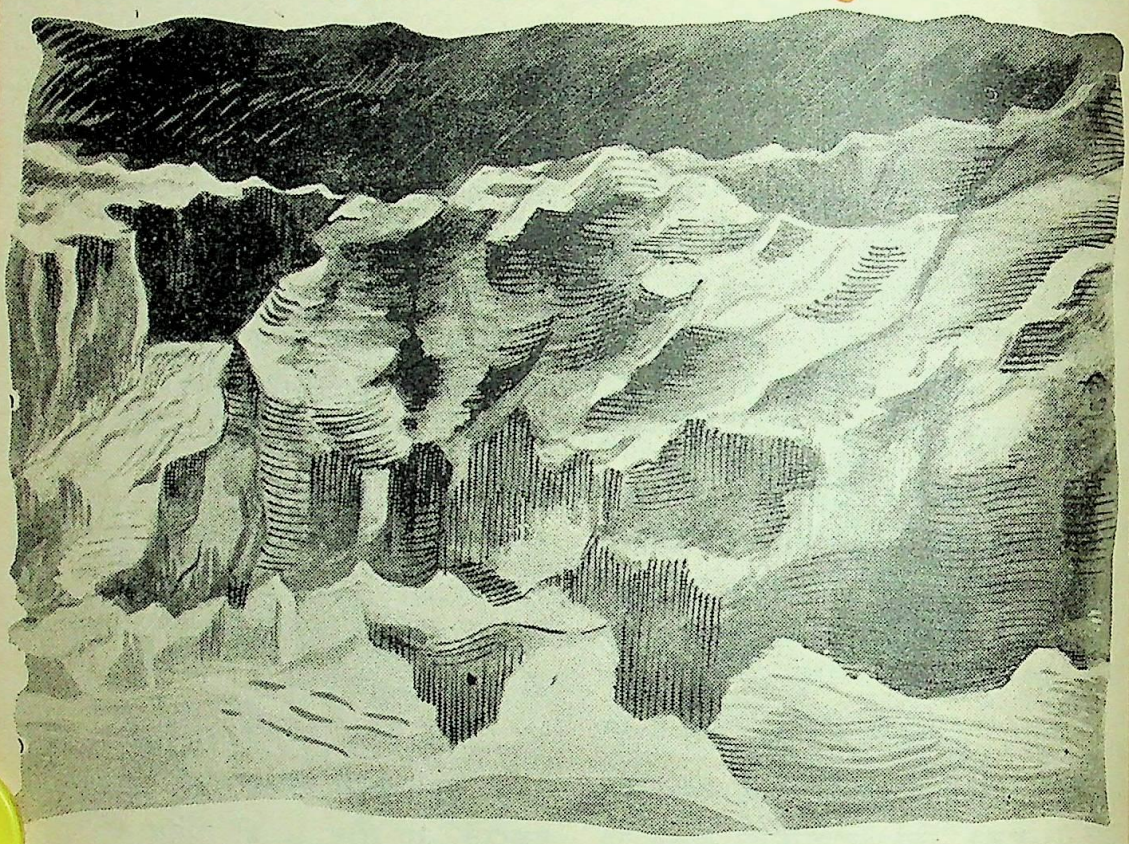

नरेन्द्रसिंह माथुर

सृष्टि का जलवायु जो आज है, वह सैकड़ों-हजारों वर्ष पहले नहीं था। आज से हजारों वर्ष बाद भी कैसा रहेगा, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। आज से १०-२० करोड़ वर्ष पूर्व, सृष्टि के आरम्भ काल में कैसा होगा, यह सर्वसाधारण के लिए भले ही कल्पना का विषय हो, एक जिज्ञासु वैज्ञानिक के लिए तो अनुसन्धान का मनोरंजक विषय है। फ्रेंच उपन्यासकार अनातोले फ्रांस ने इस बारे में अवश्य एक रोचक कल्पना की थी—'वह भी एक युग था जब यह पृथ्वी हमारे रहने लायक नहीं थी। सर्दी, गर्मी, वर्षा, सभी कुछ तो बेहिसाब था, अनाप-शनाप था! आगे चलकर ऐसा ही युग फिर भी आ सकता है जब यह पृथ्वी पुनः जीवरहित हो जाएगी और मानव का अस्तित्व ही उठ जाएगा। सूर्य की जीवनलीला समाप्त होने से पूर्व ही अन्तिम पीढ़ी का मानव ठीक वैसा ही साधनहीन तथा बुद्धिहीन, गुफाओं में जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा होगा, जैसे आदिम युग का गुहानिवासी मानव करता था। पृथ्वीपट पर सभी कुछ बर्फ ही बर्फ से ढँका होगा और अन्तिम मानव उस निर्मम आकाश से सदा-सदा के लिए विदा ले लेगा।' यह कल्पना कैसी भी भयावह तथा मर्मान्तिक क्यों न हो, उस गणना के आधार पर गलत नहीं कही जा सकेगी जिसके अनुसार एक न एक दिन सूर्य को सदैव के लिए अस्त होना ही है। फिर भी इससे विचलित न होकर सच्ची लगन के भूवेत्ता (geologists) तो अपने विभिन्न अनुसंधानों द्वारा नित नये तथ्य प्रस्तुत कर ही रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चराचर जगत जलवायु से प्रभावित

यह तो निर्विवाद है कि समस्त जड़ तथा चेतन वस्तुएँ जलवायु से स्पष्टतः प्रभावित होती हैं। प्रत्येक वस्तु को जीवित रहने तथा विकसित होने के लिए निश्चित प्रकार का जलवायु आवश्यक है। इससे कल्पना की जा सकती है कि प्रागैतिहासिक काल में जैसे दैत्याकार प्राणी (dinosaurus) तथा प्रस्तरयुगीन मानव और विशाल वृक्षों युक्त वन-प्रान्तर होते थे, वैसा ही विलक्षण जलवायु उन दिनों रहा होगा जो उन्हें माफिक आता रहा। इस अनुसंधान-कार्य में जिन साधनों से विशेष सहायता मिल सकती है वे हैं—वर्तमान जलवायु, जीवाश्म (fossils), पथराये हुए वन-प्रदेश तथा भूमिगत चट्टानें।

जुरैसिक (Jurassic) युग में उष्ण जलवायु का प्रभुत्व रहा होगा, यह वनस्पतियों के इन जीवाश्म-नमूनों से समझा जा सकता है

जल और वायु के विकट प्रभाव

जलवायु के मुख्य तीन भेद हैं—शुष्क, उष्णार्द्र और शीतल। जल और वायु मिलकर ही तो जलवायु शब्द बना है! चट्टानों पर जल का प्रभाव देखना हो तो तूफानी लहरों के थपेड़े खाते हुए उन शिला-खण्डों को, घाट की सीढ़ियों को तथा बड़ी-बड़ी चट्टानों को देखिए जो पानी की मार से घिसते-घिसते शेष रह जाते हैं। इसी प्रकार, तेज हवा के निरन्तर झोंके भी पहाड़ियों, घाटियों के रूप-रंग बदलते रहते हैं। शुष्क वायु में जल का अंश नहीं होता। फलस्वरूप चट्टानों की सतहें जो जल की उपस्थिति में कुछ अंश तक वायु से सुरक्षित रह सकतीं, घिसती चली जाती हैं। लम्बे-चौड़े विस्तार में फैले हुए ऐसे पहाड़ी प्रदेश आज भी मिल जाएँगे जहाँ कि घिसी-पिटी चट्टानें शुष्क वायु की मार की गवाही देंगी।

गर्म जलवायु में चट्टानों का रासायनिक क्षरण अधिकतम होता है। सिलिकायुक्त पीली मिट्टी तथा खरिया आदि इस नियम के प्रमुख उदाहरण हैं। इनके रजकण सूखे जलवायु का सहज सामना कर लेते हैं। जिस युग में भूमिगत चट्टानें कार्बन अर्थात् कोयले में परिवर्तित होती रहीं, वह युग —Carboniferous Period— बहुत अंश तक जीवन क्रिया के अनुकूल रहा। चट्टानों का कार्बन में रूपान्तर गर्म जलवायु में ही सम्भव है। जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ भी इसी जलवायु में उत्पन्न तथा विकसित होती हैं। साथ ही गर्म जलवायु में एक दोष भी है। वह यह कि जितनी शीघ्रता से इस जलवायु में जीवन विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव है, उतना ही शीघ्र सड़ना-गलना भी शुरू हो जाता है। कोयले की पत्तों के बीच-बीच वानस्पतिक अवशेष यह सिद्ध करते हैं कि गर्म जलवायु के पश्चात् शीघ्र ही शीतकाल छा गया होगा।

जीवाश्म अर्थात् फासिल्स का अध्ययन भी भूवेत्ता का कार्य बहुत सरल कर देता है। गर्म जलवायु में ही जीवित रह सकने वाले जीव-जन्तु, तितलियाँ, रेप्टाइल्स, केंचुए, स्पंज, घोंघे तथा उच्च श्रेणी के स्तनपायी एवं वनस्पतियों में पाम, साईकैडस फर्न आदि वृक्षों के फासिल्स यही तथ्य प्रदर्शित करते हैं। इनके विपरीत, विशालकाय मेमथ तथा लम्बे बालों वाले गेंडे आदि प्राणियों को सर्द जलवायु ही अनुकूल रहता था। आज भी हिमखण्डों (icebergs) में दबे हुए ऐसे विशालकाय प्राणियों के कंकाल तथा कहीं कहीं समूचे शरीर जब कभी प्राप्त हो जाते हैं तो यही सिद्ध करते हैं। समु में फैली हुई मूँगे की चट्टानें तो गर्म जलवा की सबसे बड़ी परिचायक हैं।

सर्द जलवायु के प्रमाण खोजने क परिश्रम करने की तो आवश्यकता ही नहीं आज के हिम-नद, हिम-खण्ड तथा ध्रुवी प्रदेशों के अटूट हिम-साम्राज्य बहुत कु कह देते हैं। ग्लासोटेरिस वंश का पौध फासिल के रूप के हमारे सम्मुख आत है तो प्रमाणित कर देता है कि उसक जीवनकाल में हिम का प्रभुत्व रहा होगा हिमयुग की तो बस कुछ न पूछिये! चा बड़े और तीन छोटे, कुल सात-सात हिमयुग से हमारी यह पृथ्वी गुजर चुकी है। अन्ति हिमयुग ने पिछले २५-३० हजार वर्षों से अपना विस्तार समेटना शुरू किया है इस हिसाब से आज का हमारा युग उ अन्तिम हिमयुग का शेष भाग ही समझ

बलुआ पत्थर (sandstone) और स्लेट (shole) के नीचे दबी, यह दस फुट ऊँची कोयले की चट्टान संकेत करती है कि प्रागैतिहासिक काल के वृक्ष और वनस्पतियाँ भी इसी प्रकार दबाव तथा जलवायु के प्रभाव से कोयले में परिवर्तित होती रही हैं

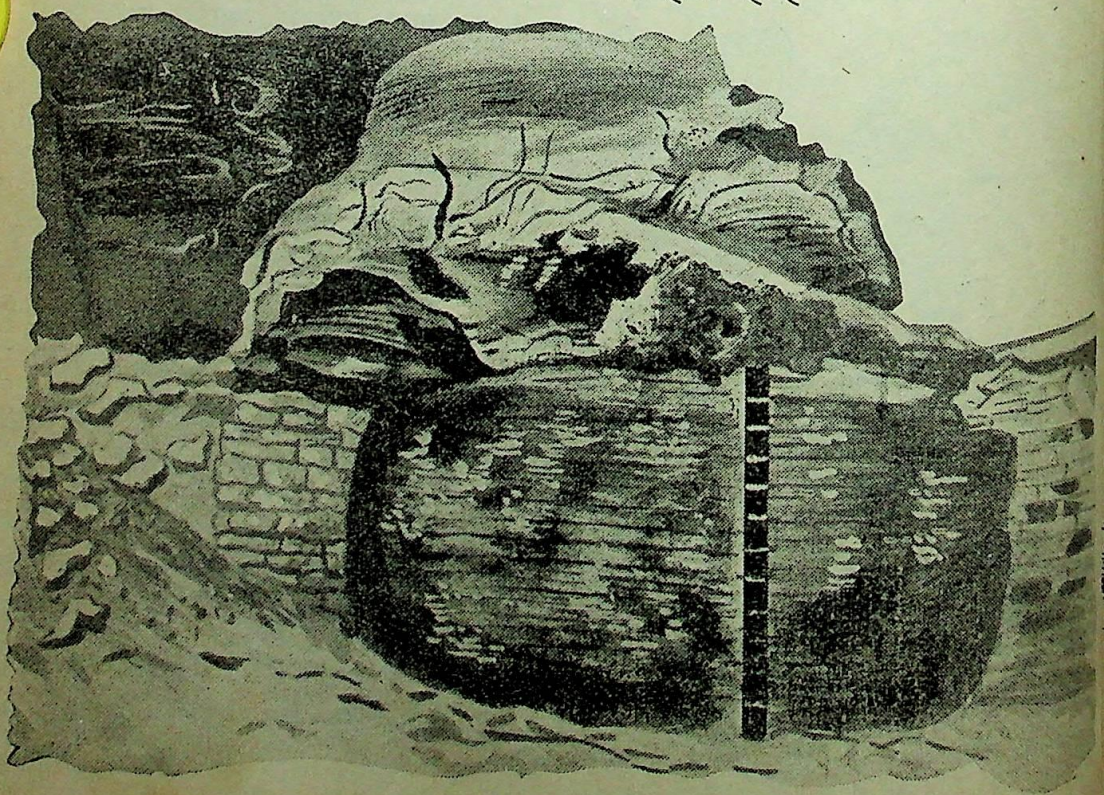

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है। यह और भी विचित्र बात है कि हिमयुगों के बीच-बीच छोटे-छोटे उष्ण-काल भी आते रहे हैं। उन बीच के युगों में ही साबर जैसे दांतों वाले बाघ-चीते, तथा लम्बे बालों वाले ऊँट आबाद रहे थे। उनके भी फासिल्स इस कथन की सत्यता प्रमाणित करते हैं। यह कहना कठिन है कि आज का युग वैसे ही एक अल्पकालिक उष्ण-काल में से गुजर रहा है या सचमुच ही हिमयुग समाप्ति की ओर अग्रसर है।

यह निश्चित है कि पृथ्वी की बाह्यावस्था तथा सूर्य के ताप से जलवायु स्पष्ट प्रभावित होती है। इस लेख के प्रारम्भ में जैसा कहा गया है, अनातोले फ्रांस की वह भयावह कल्पना सर्वथा निर्मूल तो नहीं कही जा सकती। आदिकाल से चली आ रही सूर्य की ताप-प्रसारण क्रिया किस वेग से सूर्य को समाप्ति की ओर अग्रसर किये हुए है और क्या उसका भविष्य है, यह सर्वथा भिन्न विषय है।

पृथ्वी की सतह का ताप तथा जल-वाष्प अन्तरिक्ष में विलीन होने से जितना

वनस्पति हो अथवा जीव-जन्तु, विशिष्ट जलवायु में ही जीवन-धारण सम्भव है

ग्लोसोटेरिस (Glosspoteris) परिवार की ये पर्ण वनस्पतियाँ (ferns) सहनशक्ति में अद्भुत हैं और सिद्ध करती हैं कि इनके काल में शीत का साम्राज्य रहा होगा

बचाया जा सके, उष्णता उतनी ही अधिक टिक सकेगी। यह कार्य बादलों की छत्रछाया द्वारा भली भाँति सम्पन्न हो जाता है। यों, पृथ्वी की जलवाष्प बादलों के नीचे ही नीचे टिकी रहती है और ऊपर से सूर्य अपना कार्य किये जाता है। इसके विपरीत, पर्वतीय प्रदेश पृथ्वी की इस उड़नशील सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर पाते। फलस्वरूप वहाँ शीत का साम्राज्य रहता है और बर्फ की चमकीली सतहें सूर्य की रश्मियों और ताप को ज्यों का त्यों परावर्तित करती रहती हैं।

जलवायु परिवर्तन के दो कारण और भी माने गए हैं। वायुमण्डल की गैसीय संरचना में परिवर्तन आ जाने से भी जलवायु बदलता रहता है। उदाहरणार्थ, वायु में कार्बन डाइआक्साइड की न्यूनाधिकता तथा धूल-कणों में ज्वालामुखी के कणों की अधिकता जलवायु परिवर्तित करती रहती है। पृथ्वी के भ्रमण-पथ में तथा इसकी धुरी के कोण में सूक्ष्म सा भी अन्तर आ जाने और सूर्य के क्रिया-कलाप में अन्तर आ जाने को भी जल-वायु के परिवर्तनों का कारण माना गया है।

इस प्रकार प्राचीन काल के जलवायु का अनुमान लगाना एक जिज्ञासु भूवेत्ता के लिए कम रोचक विषय नहीं, वह भी विशेषतः तब जब कि उसकी सहायता के लिए ऊपर वर्णित इतने अनेक साधन प्रकृति में उपलब्ध हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी, मैं कंगारू हूँ

प्रकाशमोहन गर्ग

"जी मैं हूँ कंगारू—अपने जत्थे का चौधरी, कंगारू परिवार का प्रसिद्ध लम्ब-तड़ंग भूरा कंगारू (large gray kangaroo) लगभग ३५० वर्ष पूर्व की कहानी सुनिएगा ?"

"क्यों नहीं ?" मैंने कहा। मैं गया ही इसलिए था। मेरा आशय भी यही था कि कंगारुओं के देश में घूम-घूमकर प्रकृति के इस चमत्कारिक प्राणी का निकट से परिचय प्राप्त करूँ। यह प्राणी पेट के बाहर की थैली में बच्चे को लिए कुलांचें भरता है, बैठने के लिए कुर्सी की एक टांग की तरह अपनी पूंछ का उपयोग करता है, एक अच्छे-खासे मुक्केबाज की शान से बाक्सिंग करता है, स्प्रिंग की तरह उछलकर अपना २०० पौंड वजनी शरीर लिए २०-२५ फुट लम्बी छलांग लगाता है, बिल्ली की तरह पंजों से रगड़-रगड़कर अपने शरीर की सफाई करता है, बन्दर की तरह डाल-डाल फुदकता है और मानव की भाँति अपने दोनों हाथों में भोजन थामकर खाता है। कंगारू गिरोह के मुखिया से उस दिन मेरी प्रथम भेंट थी।

कंगारू-मानव प्रथम भेंट

चौधरी ने शुरू किया—"सन् १६२९ की बात है। आपकी ओर से, दूर विदेश से कुछ खलासियों सहित एक कप्तान (नाम याद नहीं आ रहा) समुद्री खजाने की तलाश में निकले थे। हमारे किनारे पर आते-आते तूफान ने उन्हें घेर लिया। कुछ टूटा, कुछ डूबा और जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा, उसे उन्होंने अपने साथियों सहित किनारे पर जमा कर लिया। जब तक कप्तान सहायता की खोज में इधर-उधर भटकते रहे, खलासियों में लूट-मार और खून-खराबा मच गया। किसी तरह कप्तान को पहले ही पता चल गया। उन्होंने चुन-चुनकर विद्रोहियों को फांसी पर लटका दिया और अपना आतंक जमा दिया। सब कुछ ठीक हो जाने पर बचे-खुचे विश्वस्त साथियों सहित यहाँ डेरा डाल दिया। यहीं उन्हें सबसे बड़ा आश्चर्य, हम कंगारुओं को पहली बार देखकर हुआ था।"

"तो, वही आपकी मानव से और···"

"···मानव की हमसे प्रथम भेंट थी। सच तो यह है कि एक सुधरे-सुलझे मानव को हमारे पुरखों ने प्रथम बार तभी देखा था। मैं तो सुनी-सुनाई कह रहा हूँ। बाकी तो आप आए ही हैं, स्वयं देख लेंगे।"

मैंने पूछा—"आपका इतिहास···"

"बहुत पुराना है। यह भी कहना गलत न होगा कि आपके आदि-मानव से भी काफी पुराना।"

मैं चकराया। मैंने फिर पूछा—"मतलब ?"

"डिनासर-युग तो सुना ही होगा! प्रागैतिहासिक काल में उन्हीं का तो पृथ्वी पर एकछत्र राज्य था! जिन दिनों हमारा मध्यकाल था, डिनासर-युग अपने उत्तर-काल से गुजर रहा था। हम थैलीयुक्त प्राणियों को अपने शिशु अपरिपक्वावस्था में ही उत्पन्न करना और उन्हें इस थैली में लटकाए फिरना अत्यन्त असुविधा-जनक और अरक्षित है। भौगोलिक परिवर्तनों के फलस्वरूप जब हमारा आस्ट्रेलिया खण्ड एक ऐसा महाद्वीप बन गया जो संसार के अन्य खण्डों से सर्वथा पृथक् था, तब यहाँ हम ही हम रह गए और अधिक समर्थ स्तनपायी जीव संसार में जहाँ-तहाँ बँट गए।

पृथक निवासिनी विभिन्न जातियाँ

"हमारा यह महाद्वीप, हम और हम जैसे अन्य विचित्र प्राणियों का एक अजायबघर सा है। धीरे-धीरे हम लगभग ५० उपजातियों में विभाजित होते गए। हमारे यहाँ आप स्वस्थ कंगारू केवल १ फुट का (musk rat kangaroo) भी पाएँगे और मुझ जैसा ७ फुट ऊँचा (large gray kangaroo) भी पाएँगे। देखिये, मैं आपकी बगल में खड़ा होता हूँ और आपके कानों से भी हाथ-आधा-हाथ ऊँचा पहुँचता हूँ। हमारे रहन-

अपने अपरिपक्व बच्चे हमें थैली में ही लटकाये फिरना पड़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

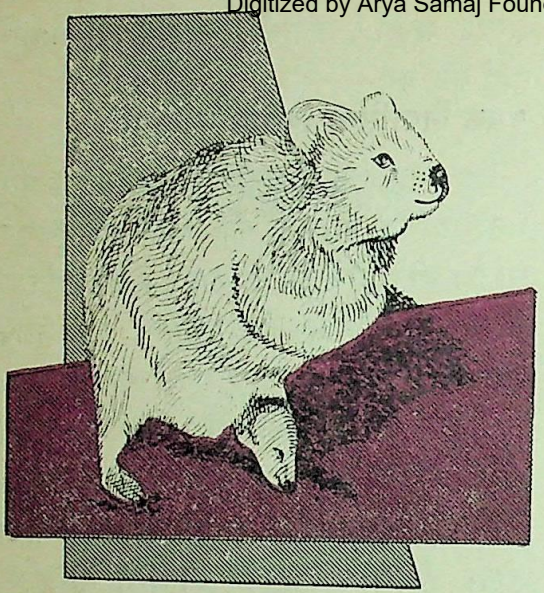

मद्धिम शरीर की वालाबी मादा अपने नन्हे को लिए हुए सैर पर निकली है

सहन में भी बड़ी विभिन्नता है। कुछ कंगारू बन्दरों की तरह पेड़ों पर ही रहने के अभ्यस्त हैं, कुछ को पहाड़ी चट्टानें और घाटियाँ पसन्द हैं, कुछ दलदली जगहों में ही मस्त हैं तो कुछ ऐसे भी हैं जो रेगिस्तान ही पसन्द करते हैं।"

मैंने बीच में पूछा—"आपकी कंगारू जाति तो एक और उपजातियाँ पचास ! यों तो पहिचानना भी मुश्किल होता होगा !"

"कुछ भी मुश्किल नहीं, क्योंकि हमने उनके बड़े-बड़े समुदायों को अलग-अलग नाम दे रखे हैं। उनका वर्गीकरण हमने उनके डील-डौल और आकृतियों से कर रखा है। मैदानों में रहनेवाले, सबसे बृहत् शरीर-धारी, हम कंगारू ही कहलाते हैं। हमें गर्व है कि हमारे राष्ट्र के सुरक्षा-प्रतीकों में हमारे यहाँ के बृहत् पक्षी एमु (emu) के साथ हमीं को चुना गया है। पहाड़ियों पर रहने-बसनेवाले कंगारुओं को वालारू (wallaroo) तथा यूरो (euro) कहते हैं। मद्धिम कद के और कुछ शर्मीले वालाबी (wallaby) और पेडेमेलन (pademalon) कहलाते हैं।"

"आपने एक फुट वाले कंगारू की भी बात कही थी न !" मैंने याद दिलाया।

"वही कहने जा रहा हूँ। उन नन्हों को मस्क रैट कंगारू (mask rat kangaroo) कहते हैं। प्राणी-विज्ञान में हमारी शाखा को मैक्रोपोडिडी (*macropodidae*) अर्थात् लम्बपाद (long-footed) कहते हैं। एक बात जो हम सबमें सामान्य है वह यह कि हम अपने विशेषण लम्बपाद के अनुरूप ही अपनी पिछली लम्बी टांगों से वे छलांगें भरते हैं जिनके लिए हम प्रसिद्ध हैं। आपके अजायबघरों में अधिकतर हमी मिलेंगे। हमें 'बड़े म्यां' (Old Boomer) का छोटा सा प्यारा खिताब भी दिया गया है"—कहते-कहते चौधरी कंगारू शर्मा गए।

"इसमें क्या शक ?" मैंने दाद दी।

धन्यवाद, कहकर उसने कहानी आगे चलाई।

"मेरी ७ फुट की ऊँचाई और २०० पौंड का वजन तो आप सुन ही चुके हैं। छलांग भी २५-३० फुट की लगा लेता हूँ। कभी मेरी दौड़ देखनी हो तो जीप मेरे साथ कर लीजिएगा। ३० मील की रफ्तार तक तो आपको आगे निकलने न दूँगा। वह रफ्तार बस थोड़ी ही देर तक चल पाती है। लम्बी दौड़ अपने बस की बात नहीं। फिर भी हमलावरों से बच निकलने के लिए वही काफी है।"

दुश्मनों से मुकाबला

"दुश्मनों से आपको चौकन्ना तो बहुत रहना पड़ता होगा !"—मैंने पूछा।

"जी हाँ, हमारे प्रमुख शत्रु तीन हैं—शिकारी कुत्ते, चट्टानों में छिपे हुए सब्जा-अजगर (green python) और हमारे नन्हे बच्चों को उठा ले जानेवाले गिद्ध बाज आदि। इनसे बचे भी तो दो प्रबल शत्रु और हमारे पीछे पड़े रहते हैं, और वे पशुओं में नहीं, आप मनुष्यों में ही हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कौन हैं वे निर्दयी ?"

"निर्दयी नहीं, लालची कहिये। काले आदमी का भाला और गोरे आदमी की गोली हमें चाहे जब वेध सकती है। वह भी सिर्फ तीन वस्तुओं के लिए—हमारा आहार प्रिय मांस, जूतों के लिए हमारी खाल तथा हाथ के दस्तानों के लिए हमारे नर्म रोयें। इसीलिए हम झुण्ड में रहते-विचरते हैं। हम शुद्ध शाकाहारी हैं और घास-पात पर ही गुजर कर लेते हैं। सुबह के पहले पहर में तथा ढलती शाम और रात के भी पहले पहर में हमारी चहल-पहल अधिक रहती है। दिन का समय हमारे आराम का है। लम्बी, ऊँची, घनी घास के बीच आराम से पड़े रहते हैं। जरा सी भी आहट होने पर हम चौकन्ने हो जाते हैं। हम शाकाहारी हैं तो यह न समझ लीजिएगा कि कमजोर भी होंगे। घूँसे और लातें हमारी अपनी ताकत है। एक बार तो हम सामनेवाले के छक्के ही छुड़ा देते हैं। कभी ऐरे-गैरे कुत्तों के बीच हम फँस भी जाएँ तो लातें और घूँसे वो जम कर चलते हैं कि कुत्तों को भागते ही बनती है। इसी प्रकार टोली की नेतागीरी का भी सवाल हम बातों से नहीं, लातों से हल करते हैं।

कुशल बाक्सर

"घूंसेबाजी बचपन से ही हमारा प्रिय शौक रहता है। जब कभी खूँख्वार लड़ाई का काम पड़ जाता है तब हम सब कुछ करने पर उतर आते हैं। हाथ तो केवल घूँसों का ही काम करते हैं लेकिन पाँव भी अपनी कारगुजारी साथ ही दिखाते हैं। दाँव लगने पर अपने पंजों से ही हम दुश्मन की खाल उधेड़ देते हैं और पेट तक फाड़कर रख देते हैं। दाँतों से उसका मुँह और कंधे भी नोच लेने में नहीं चूकते। हाँ, तमाशा दिखाने भर के लिए हम आपसे भी बाक्सिग कर सकते हैं।"

"मुझसे····मेरा मतलब है, आदमियों से ?" मैंने घबराहट व्यर्थ ही छिपाते हुए कहा।

"क्या मुश्किल है ? आप कुत्तों को हरेक कला और कलाबाजी सिखाते हैं न ? इसी तरह अजायबघरवाले हमें जब पाल लेते हैं तब तमाशा दिखाकर पैसा कमाने के लिए हमें बाक्सिग का मानवीय ढंग सिखा देते हैं। हमारा वह ट्रेनिंगकाल उनके लिए तब तक मुसीबत बना रहता है जब तक हम लातें चलाने की अपनी आदत सुधार न लें।

पौन इंच का बच्चा, सात फुट का नर !

"हमारे यहाँ बच्चों का जन्म प्रकृति की एक और विचित्रता है। हम स्तनपायी जीव हैं और अपने पेट से ही बच्चा पैदा करते हैं, अण्डों से नहीं। जरा अन्दाजा तो

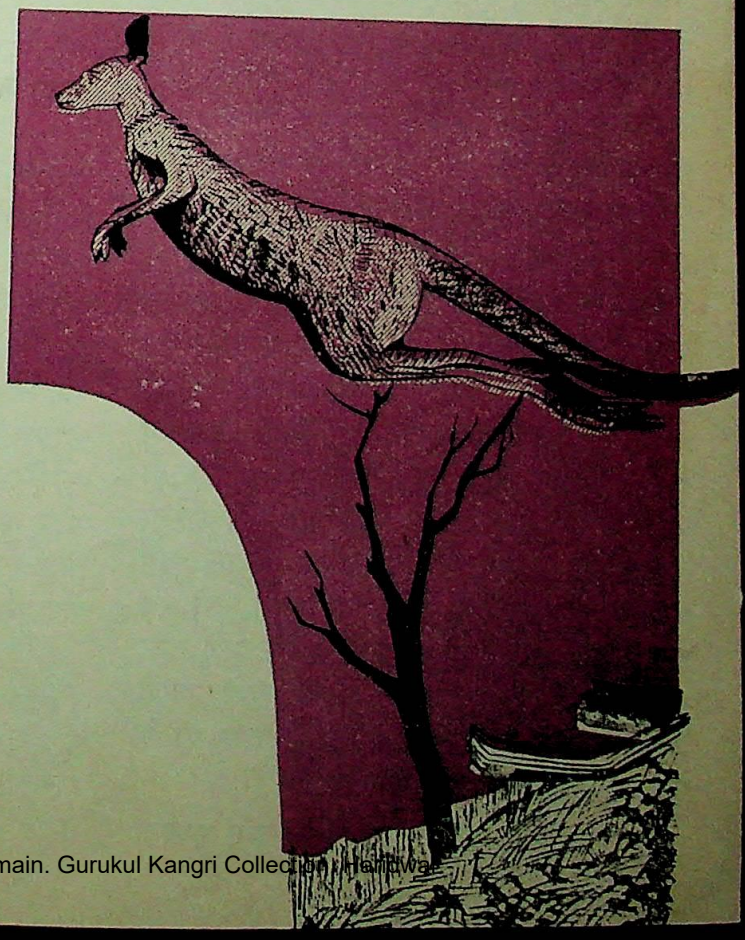

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाइए कि जन्म के समय हमारा बच्चा किस आकार-प्रकार का होगा ?"

"यही हाथ भर का और ८-१० पौंड का समझिए"—मैंने अन्दाज से हांक दिया। चौधरी इस पर जोर से हँसा और इतना हँसता रहा कि पूंछ के बल बैठे रहने का उसका सन्तुलन बिगड़ गया। लोट-पोट होकर वह फिर से जमा तो मैंने कारण पूछा।

"आपने बात ही ऐसी कही ! यहाँ भी आपने अपना गणित लगाया मालूम होता है। हमारा बच्चा पैदा होते समय आपकी अँगुली के एक पोर जितना बड़ा भी नहीं होता।"

"यानी···एक इंच से भी छोटा ?" मैं सकपकाया देखता ही रह गया।

"अब ठीक कहा आपने। बिलकुल चुहिया का नन्हा बच्चा ही समझिए। बात यह है कि हमारी मादाओं के शरीर में अन्य स्तनपायी प्राणियों जैसा सशक्त जरायु (placenta) न होने से उसे अन्दर ही अन्दर रक्त द्वारा जो पोषण तथा आक्सीजन मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। इधर कुछ तो हजरत बच्चे की ही जल्दबाजी और कुछ उधर मादा की मजबूरी; बस, पूरा बनने से पहले ही बगैर नाक-कान का नन्हा सा बच्चा निकल पड़ता है। उस समय उसकी त्वचा ऐसी पारदर्शक होती है मानो मांसपिण्ड पर प्लास्टिक का खोल मढ़ा हो।

"तब से वह अपनी माँ के स्तन से इस प्रकार चिपका चलता है जैसे उस अंग से जुड़ ही गया हो। धीरे-धीरे बढ़ता हुआ वह माँ के पेट की थैली में घर बनाना सीख लेता है। जब कभी पेट के रोयों के बीच उसे थैली का मार्ग नहीं मिलता, तब मादा जीभ से पेट पर लकीर खींचकर उसे रास्ता बताती है। उन दिनों उसकी मंजिल बस इतनी ही रहती है कि भूख लगी तो रेंग कर स्तनों से आ चिपका और पेट भर गया तो थैली में जा पहुँचा। सबसे पहले उसके हाथों के पंजे विकसित होते हैं जिनसे माँ के पेट की पकड़ मजबूत रहती है।

"तीन महीने में तो वह सर्व-अंग-सम्पन्न हो जाता है। सर्व-गुण-सम्पन्न फिर भी नहीं हो पाता। माँ के दूध से उकताया हुआ वह बीच-बीच में ललचाता है कि कुछ दुनिया देखे, दुनियादारी देखे और नर्म घास का आनन्द ले। तब वह उचककर बाहर भी हो लेता है और दो-चार मुँह नर्म घास में मारकर थैली में लौट जाता है।"

मैंने फिर बीच में पूछा—"किसी के द्वारा पीछा किये जाने पर बच्चे को ढोये फिरना तो मादा को और भी भार मालूम देता होगा !"

"आपने ठीक कहा। साधारण शत्रु से तो एक ही छलांग में पीछा छुड़ा लिया जाता है या दाँव पड़ गया तो एक ही लात में उसे धूल भी चटा दी जाती है। हाँ, विकट सामना पड़ने पर दौड़ते-दौड़ते मादा किसी झाड़ी की ओट में बच्चे को फेंककर निर्द्वन्द्व भागती है। अधिकांश तो यही होता है कि बचकर लौटने पर माँ-बेटे पुनः मिल लेते हैं वर्ना माँ निछावर होना भी खूब जानती है। हमारे यहाँ बच्चे को भी आप लोगों ने एक नन्हा सा बड़ा प्यारा नाम जोय (Joe) दे रखा है।"

मैं मुग्ध भाव से सुने जा रहा था।

अन्य जाति-भाई

"शिकारियों को चकमा देने में हमारे पहाड़ी-भाई (rock kangaroo) भी बहुत तेज हैं। नुकीली, सँकरी, ढलवाँ चट्टानों पर ऐसे जमे हुए कदमों से सरपट भागते हैं, मानो सर्प सरसराता जा रहा हो। अधिकतर तो यही होता है कि शिकारी का भाला निशाना चूककर चट्टान से टकरा जाता है और टुकड़े-टुकड़े हो जाता है या खाई-खन्दक में खो जाता है। इस पहाड़ी और फुर्तीली जिन्दगी के लायक ही उनके पिछले पाँव हमसे कुछ छोटे होते हैं। उनका कद भी ठिगना होता है।

"हमारे मैदानी-भाई, लाल कंगारू (red kangaroo) भी ऐसे ही तेज होते हैं। उन्हें यहाँ के रेतीले मैदानों और रेगिस्तानों में पानी के लिए दूर-दूर भटकना पड़ता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

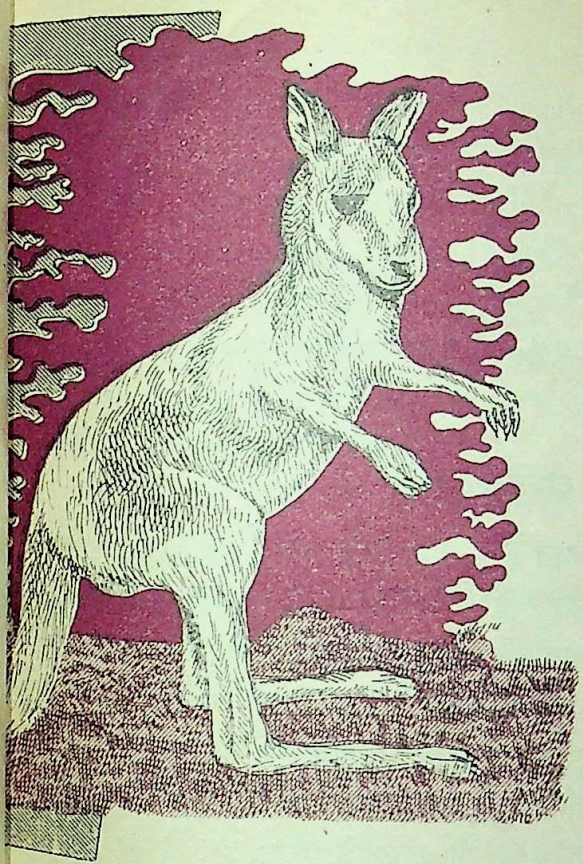

नन्हा जोय अब कुछ बड़ा हो गया है। माँ ने छाती से चिपकाये रखना छोड़ दिया है। फिर भी जब भूख सताती है तो माँ की छाती से लिपट ही जाता है,

मैंने याद दिलाया—"पेड़ों पर रहनेवाले कंगारू का भी आपने जिक्र किया था।"

"मैं भूला नहीं हूँ। बस, ये ही दो-एक बातें बताकर आज आपसे छुट्टी लूँगा। आपको भी कैम्प पहुँचना है न ?"

मैंने स्वीकार किया—"खूब याद दिलाया। मैं तो आपके वार्त्ता-रस में डूबा हुआ उभर ही नहीं पा रहा था !"

"यह तो आपकी कृपा है।"

तरु निवासी कंगारू

"पेड़ों पर रहनेवाले कंगारू यद्यपि सरपट दौड़-भाग तथा उछल-कूद कर सकते हैं फिर भी उन्होंने पेड़ों से ही नाता जोड़ रखा है। इसलिए उनके हाथ-पाँव कुछ छोटे और कूल्हे चौड़े तथा गद्दीदार होते हैं। इससे उन्हें डालों पर बैठने में सुविधा रहती है। पिछले पाँवों के तलवे फिसलने न होकर खुरदरे होते हैं ताकि डालों की पकड़ मजबूती से हो सके। हाथों के पंजे मजबूत तथा मुड़े से भी रहते हैं। उनके द्वारा वे लटकती शाखों को पकड़कर सरलता से डाल-डाल झूल सकते हैं। इस डाल से उस डाल, वे भी २०-३० फुट की छलाँग लगा लेते हैं और बन्दर जैसी सरलता से ४० फुट ऊँचे पेड़ से जमीन पर भी कूद लेते हैं। उन्हें भी दिन में सोना पसन्द है। घुटनों में सिर दिए, डाल पर बैठे ही बैठे ऊँघते रहते हैं। शाम के झुटपुटे में और रात के अँधेरे में नीचे उतरकर वे भोजन की तलाश में निकलते हैं। जलाशयों के निकट उन्हें अपना शाकाहार प्रचुरता से मिल जाता है। उनका शिकार बड़ी निर्ममता से किया जाता है।"

"वह कैसे ? भाला तो ऊपर पहुँचता नहीं होगा ? बन्दूक से ?" मैंने पूछा।

"अजी नहीं। शिकारी कुत्तों की टोली पेड़ के नीचे घेरा डाले, जीभें लप-लपाती ताक में रहती है और भाला लिए शिकारी पेड़ पर चढ़कर इन्हें घेरते हैं। कुछ देर तो ये मुकाबला लेते हैं लेकिन घबराहट के मारे उछल-कूद में जब नीचे जा गिरते हैं तब बाकी कहानी वे कुत्ते पूरी कर देते हैं।"

कहानी के अचानक ही इस गीले मोड़ पर कुछ देर चुप्पी रही। तभी चौधरी-कंगारू फिर बोला—"आज आपका बहुत समय लिया। अब शाम भी घिर आई है। कल फिर मिलिएगा न ?"

"अवश्य।" कहकर मैंने पुनः उसे धन्यवाद दिया और अपनी जीप स्टार्ट कर दी। तभी पीछे से एक लाल कंगारू सरपट भागता हुआ जीप की बगल से गुजरा। मैंने भी चाल तेज करके कदम जो मिलाया तो मान गया कि चौधरी कंगारू ने सच ही कहा था।

मेरा स्पीडोमीटर उसकी रफ्तार २८-३० बता रहा था ! ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

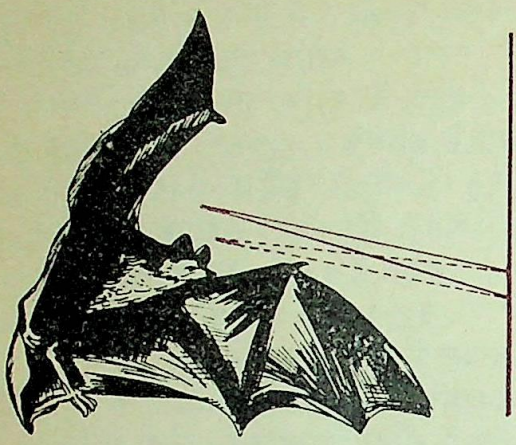

कर्णातीत ध्वनियाँ

डा. दयाप्रसाद खण्डेलवाल

सामान्य ध्वनियाँ वायु के कम्पनों की बनी होती हैं। यदि प्रति सेकण्ड २० से लगाकर १५००० तक कम्पन उत्पन्न किये जाएँ तो उनसे जो तरंगें वायु में उत्पन्न होती हैं उन्हें मनुष्य के कान सुन सकते हैं। उन्हें श्रव्य-ध्वनियाँ कहते हैं। १५००० से अधिक आवृत्ति के कम्पनों को मनुष्य के कान नहीं सुन सकते। ऐसी ध्वनियों को कर्णातीत या श्रव्येतर ध्वनियाँ कहते हैं। यदि औसत श्रव्य-ध्वनि की आवृत्ति ५०० कम्पन प्रति सेकण्ड हो तो वायु में उसकी तरंग-दूरी लगभग ६० सेंटीमीटर होगी। इसकी तुलना में ५०००० आवृत्ति की कर्णातीत ध्वनि के लिए तरंग-दूरी केवल ०·६ सेंटीमीटर रहेगी।

कर्णातीत ध्वनि उत्पन्न करने के लिए विशिष्ट उपकरण चाहिए। क्वार्ट्ज (quartz) उनमें मुख्य है। इसमें यह गुण होता है कि इसकी पतली पट्टियाँ काटकर उनके विपरीत पृष्ठों पर विद्युतावेश बारी-बारी से बदलें तो पट्टियाँ बारी-बारी से मोटी-पतली होती जाती हैं। उन पृष्ठों पर धातु की पन्नियाँ लगाकर उन पर विद्युत कम्पन कराएँ तो पट्टियों में भी उसी आवृत्ति के कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं। एक विशिष्ट आवृत्ति पर तो वे कम्पन बहुत प्रबल हो जाते हैं। इस क्रिया को 'यांत्र-वैद्युत क्रिया' कहते हैं। इसी प्रकार यदि लोहे की किसी छड़ को बारी-बारी से चुम्बकित और विचुम्बकित करें तो उसकी भी लम्बाई बढ़ती-घटती जाती है। छड़ को चुम्बकित करने वाली कुण्डली में प्रत्यावर्ती विद्युतधारा बहाएं तो छड़ की लम्बाई में कम्पन उत्पन्न होते हैं। ये कम्पन भी एक विशिष्ट आवृत्ति पर प्रबल होते हैं। वह आवृत्ति छड़ के आकार तथा गुणों पर निर्भर होती है। ४९ प्रतिशत लोहा, ४९ प्रतिशत कोबाल्ट तथा २ प्रतिशत वेनेडियम मिश्रित धातु में यह क्रिया बहुत प्रबल होती है। इस क्रिया को 'चुम्बकीय क्रिया' कहते हैं।

कर्णातीत ध्वनियों को समझने के लिए विवर्तन क्रिया समझना आवश्यक है। रात के समय घर के बाहर खड़े होकर देखें तो प्रकाश सीधी रेखा में पहुँचता दीखेगा; किन्तु ध्वनि को दीवारों की ओट से भी सुना जा सकता है। इसका कारण यह है कि प्रकाश तरंगें अत्यन्त लघु होती हैं। अतः दीवारों की ओट में मुड़ने की अर्थात् विवर्तन की क्रिया उनमें बहुत कम होती है। प्रकाश-तरंगों में तरंग दूरी १/२०००० सेंटीमीटर के लगभग होती है। इसके विपरीत ध्वनि-तरंगों में तरंग-दूरी ६० सेंटीमीटर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग होती है। इसलिए सामान्य ध्वनि-तरंगें सरल रेखीय पथ पर सीमित न रहकर बहुत विवर्तित होती हैं अर्थात् फैलती हैं। उच्च आवृत्ति-तरंगों की तरंग-दूरी कम होगी। अतः वे अपेक्षाकृत कम ही विवर्तित होंगी। यही कर्णातीत ध्वनियों का रहस्य है। उदाहरणार्थ ५०००० कम्पन प्रति सेकण्ड की ध्वनि २० सेंटीमीटर व्यास की प्लेट से उत्पन्न करें तो वह प्लेट की लम्ब दिशा से केवल दो डिग्री इधर-उधर फैलेगी।

कर्णातीत ध्वनियों का उपयोग प्रथम महायुद्ध में प्रारम्भ हुआ था। सन् १९१६ में फ्रांस का जहाजी बेड़ा जर्मन पनडुब्बियों से परेशान था। पाल लेंगेविन ने सुझाया कि कर्णातीत ध्वनियों की सहायता से पनडुब्बियों की टोह ली जा सकती है। प्रेषण-केन्द्र से कर्णातीत ध्वनि का एक संक्षिप्त संकेत भेजें तो मार्ग में कोई रुकावट न होने पर तो वह विलीन हो जाएगा अन्यथा रुकावट से टकराकर लौट आएगा। संकेत के भेजने तथा लौटने के मध्य जो समय लगेगा, उससे उस रुकावट की दूरी ज्ञात हो जाएगी। मान लें कि समय का वह अंतर ४ सेकण्ड है तो चूँकि पानी में ध्वनि का वेग लगभग ५०००० फुट प्रति सेकण्ड है, ध्वनि २०००० फुट तक गई मानी जाएगी। अतः उस वस्तु की दूरी १०००० फुट अर्थात् लगभग २ मील हुई। आप शायद सोचें कि इसमें कर्णातीत ध्वनियों की ही क्या विशेषता है? सामान्य ध्वनि तरंगों से यह क्यों नहीं हो सकता? इसका रहस्य विवर्तन की क्रिया में है। सामान्य ध्वनि तरंगों को किसी निश्चित दिशा में सीमित नहीं किया जा सकता, अतः वे तो प्रेषण-केन्द्र से किसी भी दिशा में रुकावट होने पर लौट आएँगी। हमारा उद्देश्य उस वस्तु की दूरी ही नहीं उसकी दिशा भी जानने का है, अतः कर्णातीत ही आवश्यक है जो अपनी लघु-तरंग दूरी के कारण बहुत कम फैलती है।

पानी में कर्णातीत ध्वनियाँ उत्पन्न करने वाले यन्त्र को हाइड्रोफोन कहते हैं। इस यन्त्र में १५००० से ३०००० कम्पन प्रति सेकण्ड तक की ध्वनियाँ काम में लायी जाती हैं और प्रत्येक संकेत लगभग १/१० सेकण्ड के लिए उत्पन्न किया जाता है। लौटनेवाली प्रतिध्वनि संग्राहक केन्द्र पर पड़ती है जिसका संकेत एक कम्पन-आलेख (ओसिलोग्राफ) पर पढ़ा जा सकता है। भेजे गये तथा लौटे हुए संकेतों की दूरी इस आलेख पर पढ़ने से उस रुकावट की दूरी ज्ञात हो सकती है जहाँ से संकेत टकराकर लौटा। आजकल प्रत्येक जहाज में हाइड्रोफोन लगा रहता है। यह यन्त्र लगातार सक्रिय रहता है और प्रतिध्वनियों की टोह रखता है। इस प्रकार यह चौकीदार का काम करता है। भिन्न प्रकार की रुकावट से प्रतिध्वनि भी भिन्न प्रकार की आती है। अतः यन्त्र के सामने बैठा व्यक्ति न केवल वस्तु की दूरी बल्कि उसका अनुमानित स्वरूप भी जान लेता है कि वह कोई हिमखण्ड है या पनडुब्बी या व्हेल। समुद्र की गहराई नापने के लिए भी यही

क्वार्ट्ज की पतली, विद्युतावेशित पट्टियाँ, कम्पनावस्था में

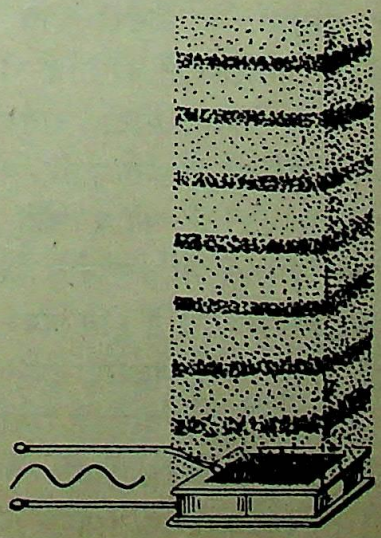

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

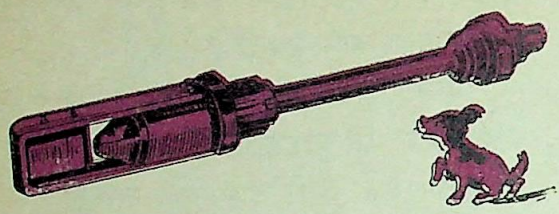

कर्णातीत-ध्वनि उत्पादक इस सीटी की आवाज यह पालतू कुत्ता ही सुन सकेगा हम या आप नहीं

विधि काम में आती है। ज्यों-ज्यों जहाज चलता है, गहराई का माप अंकित होता जाता है। इसी विधि के द्वारा लगभग ३०० फुट नीचे एक डूबे हुए जहाज की खोज की जा सकी थी।

प्रकृति में भी कर्णातीत ध्वनियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कुत्ते के कान १५००० प्रति सेकण्ड से भी अधिक आवृत्ति की ध्वनियों को सुन सकते हैं। फलतः किसी मेले में हम केवल इन उच्चतर आवृत्तियों की ध्वनि उत्पन्न करके अपने कुत्ते को दूर से बुला सकते हैं। अन्य व्यक्तियों को इसका पता भी नहीं चलेगा। चमगादड़ कर्णातीत ध्वनियाँ इधर-उधर भेजता रहता है और उनकी प्रतिध्वनियों के आधार पर ही मार्ग की टोह ले लेता है। नेत्रहीन मनुष्यों के लिए भी ऐसे प्रयोग चल रहे हैं कि कर्णातीत ध्वनि की सहायता से वे मार्ग का पता लगाते हुए चल-फिर सकें।

ठोस वस्तुओं के भीतरी दोष ज्ञात करने के लिए एक्स-किरणों का नाम तो सुना ही होगा। किन्तु अधिक मोटी धातुओं के लिए उनका उपयोग सम्भव नहीं, क्योंकि उनके छोटे-छोटे दोषों को वे नहीं बता सकतीं। इस दिशा में भी कर्णातीत ध्वनियों का उपयोग व्यापक रूप से होने लगा है। ये ध्वनियाँ धातुओं की गहराई तक बिना क्षीण हुए जा सकती हैं। धातु में जरा भी दरार पड़ी हो तो उससे यह ध्वनि क्षीण हो जाती है और स्पष्ट पता लग जाता है। प्रेषक तथा ग्राही को खिसकाते जाएँ तो पदार्थ में भी दोष होगा वहीं तीव्रतामापी में क्षीण का संकेत आ जाएगा। यह विधि कई तक की मोटाई के लिए काम आ सकती इसमें कठिनाई यह है कि दोष कितनी गहरा पर है, इसका सहज पता नहीं लगता।

परावर्तन पर आधारित यन्त्र में यह नहीं। इस यन्त्र में कर्णातीत ध्वनि-क लगातार नहीं भेजे जाते। एक बहुत छो संकेत भेजा जाता है और उसकी प्रतिध्व के संकेत की प्रतीक्षा की जाती है। वस्तु अन्त तक ठीक है तब तो प्रतिध्व केवल दूसरे सिरे से ही आएगी किन्तु बी में कोई भी दोष होने पर अन्य प्रतिध्वनि भी आएँगी। हाइड्रोफोन की भाँति ही ध्वनि संकेतों को ग्राही द्वारा विद्युत-संके में बदलकर एक कैथोडकिरण के कम्पनद पर लगाया जाता है। उस पर समय अन्तर के अनुसार प्रत्येक प्रतिध्वनि अलग-अलग संकेत बन जाता है। क्रिया का सिद्धान्त चित्र में प्रदर्शित है कम्पनकारी से भेजे गये संकेत का कुछ भ

हाइड्रोफोन द्वारा जहाज पानी में छिपी बाधाओं टोह सहज ही ले सकता है

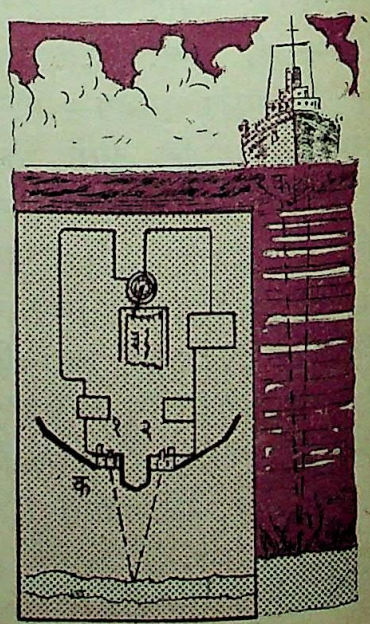

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

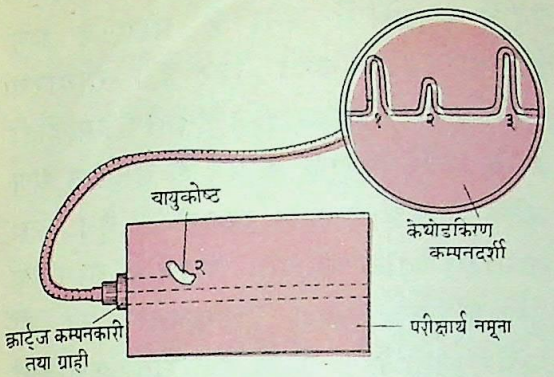

परावर्तन पर आधारित कर्णातीत-परीक्षक सिद्धान्त

पहले पृष्ठ १ से तथा कुछ अन्तिम पृष्ठ ३ से परावर्तित होता है। कम्पनदर्शी के पर्दे पर इनके लिए संकेत १ और ३ बनते हैं। अब यदि नमूने के पदार्थ में कोई बुलबुला रह गया है या दरार पड़ी है तो एक प्रतिध्वनि संकेत वहाँ से भी आएगा जो कम्पनदर्शी पर १ और ३ के बीच अंकित होगा। यदि कम्पनदर्शी पर दूरी १-२ और १-३ का अनुपात ३/८ मान लें, तो नमूने में दोष ३/८ गहराई पर माना जाएगा।

मानव-शरीर के परीक्षण में भी इस प्रकार की विधियाँ काम में ली जाती हैं। मस्तिष्क की बनावट जानने के लिए, गांठ (ट्यूमर) की स्थिति ज्ञात करने के लिए तथा इसी प्रकार के अनेक उपयोगों में कर्णातीत ध्वनि काम में ली जाती है। इसमें कठिनाई यह है कि अन्य अनेक प्रतिध्वनियाँ भी मानव अंगों से आती हैं, अतः पर्याप्त ज्ञान तथा अनुभव के बाद ही सही निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर के स्वस्थ अंग की अपेक्षा ट्यूमर से पीड़ित अंग की कर्णातीत प्रतिध्वनि भिन्न होती है। सरल ट्यूमर में क्षीणतर तथा जटिल अवस्था में तीव्रतर होती है। अतः न केवल ट्यूमर की स्थिति का, बल्कि उसके प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है।

अनेक रासायनिक तथा भौतिक क्रियाएँ भी ऐसी हैं जो उच्चतर आवृत्ति के कम्पनों की उपस्थिति में ही होती हैं। बहुत से जीवाणु अत्यधिक आवृत्ति के कम्पनों से मर जाते हैं। अतः कर्णातीत ध्वनियाँ स्वयं भी अनेक क्रियाएँ कर सकती हैं।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि सरलतम जीवाणु कर्णातीत ध्वनियों के प्रभाव से १/१०००० सेकण्ड से भी कम समय में नष्ट हो जाते हैं। रोगाणुओं के विनाश के लिए इन ध्वनियों के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। बड़े प्राणियों में यह प्रभाव इतना घातक नहीं होता। मछलियों में देखा गया है कि इन ध्वनियों के कारण वे पानी की सतह पर उलटी हो जाती हैं और असहाय अवस्था में बहने लगती हैं। ध्वनि के बन्द होते ही वे पुनः स्वस्थ हो जाती हैं। कम तीव्रता वाली ध्वनियों का उपयोग कुछ रोगों के इलाज में किया जाता है। इसके अतिरिक्त उनका उपयोग दीर्घ शृंखली अणुओं को बनाने तथा भंग करने की क्रिया को नियंत्रित करने में, पायस (इमल्शन) बनाने में, मणिभ उगाने में तथा चमड़ा साफ करने आदि में भी होता है। विविध उपयोगों के लिए विभिन्न आवृत्ति तथा तीव्रता की कर्णातीत ध्वनियाँ आवश्यक हैं। इस विषय पर प्रयोग और अनुसंधान बराबर जारी हैं।

अमरीका इस दिशा में किस तत्परता से प्रगति कर रहा है यह निम्नवर्णित उपयोगों से समझा जा सकेगा।

कुछ समय पूर्व वहाँ के बोस्टन हवाई अड्डे पर एक एलेक्ट्रा जेट विमान पक्षियों के झुण्ड से टकरा गया था। अब यह सम्भव है कि पक्षियों द्वारा उत्पन्न कर्णातीत ध्वनियों का पूर्वसंकेत प्राप्त करके ऐसी दुर्घटना को टाला जा सके। इसी का एक अन्य उपयोगी उपकरण है साउण्ड स्पेक्ट्रम एनलाइजर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उन पुर्जों की ध्वनि-लहरों के आवर्तन की माप करता है जो कभी-कभी कर्कश ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं। साथ ही, यह हानिकारक स्पन्दनों और आकस्मिक धक्कों के प्रभाव को भी अंकित करता है।

इस प्रारम्भिक अवस्था में उपकरणों की कीमतें काफी अधिक होने के कारण विकास इतना तीव्रगामी नहीं है। फिर भी कदम बराबर प्रगति की ओर अग्रसर है। हाल ही में नये प्रकार के जनरेटर, हाइड्रोमेटिक आसिलेटर और एलेक्ट्रो हाइड्रॉलिक माडुलेटर नमूने के स्वरूप तैयार किये गए हैं। इनके द्वारा खाद्य-पदार्थ, रसायन, रंग, सौन्दर्य-प्रसाधन, वस्त्रादि तथा धातु-शोधन के उद्योगों में ध्वन्यात्मक ऊर्जा का प्रयोग किया जा सकेगा। इस शक्ति का उपयोग सफाई करने के प्रयोगों में भी हो रहा है। इसके द्वारा उत्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत लहरें किसी भी सतह की धूल आदि को फूँककर उड़ा देती हैं। इनके लिए आवश्यक उपकरण और भी विकसित रूप में निर्मित होने पर घड़ियों के नाजुक पुर्जों की, जटिल मशीनों के पुर्जों की तथा जेट विमान के पुर्जों की भी सफाई विश्वसनीय रूप से की जा सकेगी।

आपको कोई भवन या नाट्यशाला बनानी हो और आप ध्वनि की दृष्टि से उसके गुण-दोष जानना चाहें तो वास्तविक भवन जो बनाना है उसके १/१० या १/२० का एक नमूना बनवाइए और उसमें मानव ध्वनि से क्रमशः १० या २० गुनी आवृत्ति की ध्वनियाँ उत्पन्न करके परीक्षण कर लीजिए। उन ध्वनियों की तरंग-दूरी वास्तविक भवन के अनुपात में होगी। अतः परीक्षण के आधार पर भवन में आवश्यक परिवर्तन आप पहले ही से ज्ञात कर सकेंगे।

यह सभी जानते हैं कि सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ अणुओं से बना है और वे अणु निरन्तर गति करते रहते हैं। साधारण ध्वनि-कम्पनों की आवृत्ति इतनी कम होती है कि ध्वनि के एक कम्पन के समय में अणु अनेक बार इधर-उधर टकरा लेते हैं। अतः साधारण ध्वनि की गति पदार्थ के सामूहिक गुणों (घनत्व तथा प्रत्यास्थता) पर ही निर्भर होती है। इसके विपरीत, कर्णातीत ध्वनियों का कम्पनकाल अत्यन्त छोटा होता है। उनकी गति के अध्ययन से पदार्थ के अणुओं के गुण-दोषों पर भी प्रकाश पड़ता है।

कर्णातीत ध्वनियों का कार्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। इंजीनियरिंग, चिकित्सा, युद्ध और रक्षा तथा उद्योग-व्यापार के लिए अत्यन्त उपयोगी इस कर्णातीत ध्वनि-विज्ञान में बहुत कुछ करना शेष है। ●

भारत का इतिहास

बच्चों के लिए

बच्चों में इतिहास पढ़ने की दिलचस्पी पैदा करने के लिए, सरल भाषा में रोचक ढंग से लिखी गयी, इकरंगे और बहुरंगे चित्रों तथा नक्शों से परिपूर्ण, यह पुस्तक अपने बच्चों के लिए जरूर खरीदिए।

- क्राउन चार पेजी
- १६४ पृष्ठ
- मूल्य ३ रु०

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,

पुराना सचिवालय, दिल्ली-६

डी.ए. ६२/६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बग़ैर दवा सर्दी जुकाम से छुटकारा

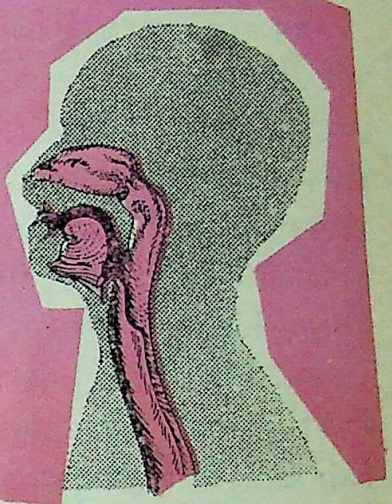

रामप्रसाद जैन

कड़ाके की सर्दी के दिन अभी-अभी ही बीते हैं। अभी होली तक सर्दी की बहार और रहेगी। सर्दियों में तो सर्दी से बचते रहना सरल है किन्तु सर्दी के आरम्भ और अन्त में प्रायः ही धोखा हो जाता है। वह सर्दी जब लगती है तब फेफड़ों की सूजन, खाँसी, जुकाम, बुखार तथा न्यूमोनिया आदि बड़ी उलझनें पैदा कर देती है। कभी-कभी तो असावधान रहने पर जीवन-संकट तक उपस्थित हो जाता है। कुछ व्यक्तियों को स्वभावतः ही ये बीमारियाँ सर्दी के मौसम भर परेशान करती हैं। अधिकांश रोगी तो अस्थायी रोक-थाम करके ही सन्तोष कर लेते हैं। कुछ ही ऐसे होते हैं जो इन रोगों को जड़ सहित उखाड़ फेंकने का उद्योग करते हैं।

ब्रोन्काइटिस किन कारणों से

फेफड़ों की सूजन अथवा ब्रोन्काइटिस (Bronchitis) का सीधा सम्बन्ध हमारे श्वसन-तंत्र से है। सर्दी का सहज शिकार भी यह श्वसन-तन्त्र ही हो जाता है। जिन स्थलों पर सर्दी-गर्मी के परिवर्तन आकस्मिक तथा तीव्र होते हैं और जहाँ कारखानों की अधिकता के कारण वायुमण्डल गर्द और धुंध भरा रहता है, वहाँ के निवासियों को यह रोग अधिक परेशान करता है। इनके अतिरिक्त, जहरीले धुएँ के गुब्बार उड़ाते हुए डीजल के ट्रक और बसें भी वायु को दूषित करते रहते हैं। ऐसे दूषित वातावरण में रहनेवाले स्वस्थ व्यक्तियों के रक्त में भी ब्रोन्काइटिस के सूक्ष्माणु पाये गये हैं, परन्तु उनकी जीवन-शक्ति इन सूक्ष्माणुओं को बढ़ने नहीं देती।

असन्तुलित और अनियमित आहार भी इस रोग का एक मुख्य कारण है। श्वेतसार और शर्करा की अधिकता दाँतों के लिए हानिकारक है।

ब्रोन्काइटिस अचानक आक्रमण तो अपवाद स्वरूप ही करता है। सामान्यतः तो इस पर निर्भर रहता है कि बाल्यावस्था से ही खाद्य-व्यवस्था कैसी रही है। अतः जिन्हें इन विगत सर्दियों में ब्रोन्काइटिस ने बेहद परेशान किया हो, वे यहाँ लिखित सूचनाओं पर आचरण करते हुए आगामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्दियों में इन रोगों का मुकाबला बखूबी कर सकेंगे।

हमारा श्वसन-तंत्र

इस रोग से सहज ही प्रभावित हो जाने वाले श्वसन-तंत्र की रचना समझ लेना उपयोगी रहेगा। हमारे दोनों फेफड़ों में ब्रोन्कियल नलिकाओं (Bronchial tubes) का पेड़ की शाखाओं सरीखा जाल रहता है जिसके कारण इसे ब्रोन्कियल वृक्ष (Bronchial tree) का नाम दिया गया है। इन नलिकाओं का यही काम है कि फेफड़ों में स्थित असंख्य वायु-कोशिकाओं (air sacs) के लिए वायु का वहन-प्रतिवहन करती रहें। इन नलिकाओं की भीतरी सतह में श्लेष्म-झिल्ली (mucuous membrane) का आवरण रहता है। इस झिल्ली में नन्ही-नन्ही ग्रन्थियाँ होती हैं जो श्लेष्म-द्रव स्रवित करते हुए झिल्ली को तर रखती हैं। ब्रोन्काइटिस की अवस्था में इस झिल्ली में सूजन आ जाती है और ये ग्रन्थियाँ अधिक दबाव पड़ने के कारण असाधारण रूप से सक्रिय हो उठती हैं। तब अतिरिक्त बनता और बहता हुआ श्लेष्म-द्रव कफ कहलाता है। उसकी रंगत श्वेत से क्रमशः पीली होती जाती है।

रोग की विभिन्न अवस्थाएँ

रोग का वेग बढ़ने पर इन नलिकाओं का मार्ग संकुचित होता जाता है। फलतः रोगी को श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है। इस अवस्था को एस्थमा (Asthma) कहते हैं। नलिका-संकोचन के अतिरिक्त वायु कोशिकाओं की वायुधारिता भी जब कम हो जाती है तब रोगी की स्थिति विशेष शोचनीय हो जाती है और उसे असाधारण अशक्ति घेर लेती है। उपयुक्त उपचार न होने पर वर्ष-प्रतिवर्ष सर्दियों में यह रोग अपना विस्तार फैलाते-फैलाते

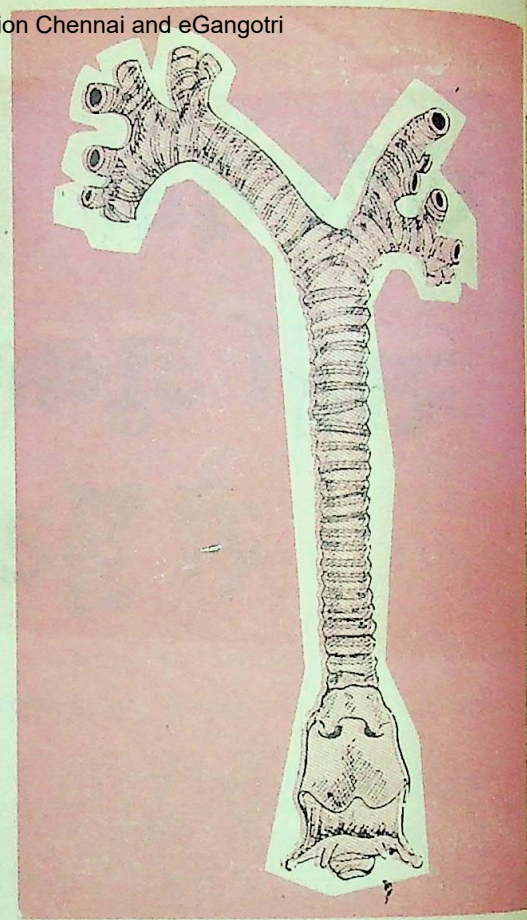

यह है मुख्य श्वसनी (bronchus) जो शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित होकर फेफड़ों में फैली है।

हृदय की सीमाओं को भी लांघने लगता है।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रोन्काइटिस की प्रारम्भिक अवस्था सरल घरेलू उपचार तथा सन्तुलित आहार से कुछ ही सप्ताहों में दूर की जा सकती है। कठिन अवस्था के रोगी को एक सुसंचालित प्राकृतिक चिकित्सालय का आश्रय लेने से अवश्य लाभ हो सकेगा। जहाँ यह व्यवस्था सम्भव न हो, वहाँ निम्नलिखित सरल उपचार लाभप्रद सिद्ध होगा।

सुनियोजित उपवास

सुनियोजित उपवास इस प्राकृतिक चिकित्सा का प्रथम चरण है। यदि रोग की अवस्था बढ़ी हुई हो और उपवास के कुशल नियन्त्रण की व्यवस्था सुलभ न हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा उपवास २-३ दिन से अधिक न चलाना चाहिए। कदाचित कार्य की व्यस्तता जैसी विशेष परिस्थितिवश उपवास सम्भव न हो तो ३-४ दिन के लिए भोजन में स्टार्च और प्रोटीनयुक्त पदार्थ न लेने चाहिए। रोग की तीव्रता के अनुसार यह उपवास-क्रम १-२ दिन से लेकर ४ दिन तक चलाया जा सकता है।

उपवास के अन्तिम दिन पुनः आहार प्रारम्भ करने में जल्दबाजी न करनी चाहिए। प्रथम आहार में ऋतु के अनुकूल फल का रस ही लेना चाहिए। यदि रसीला फल प्राप्य न हो तो सेब जैसे अन्य फल को बारीक कतरकर काम में ले सकते हैं। यह आवश्यक है कि पीने अथवा फल खाने की यह क्रिया बहुत धीमी होनी चाहिए। दूसरे आहार में फलों की उचित मात्रा बढ़ाई जा सकती है। सेब, अनार, आड़ू, अंगूर, पपीता आदि ले सकते हैं किन्तु खाने की क्रिया अत्यन्त धीमी होनी चाहिए। रात के समय केवल हलका सलाद लेना चाहिए।

फेफड़ों में स्थित, श्वसनी की एक शाखा अपनी प्रशाखाओं सहित

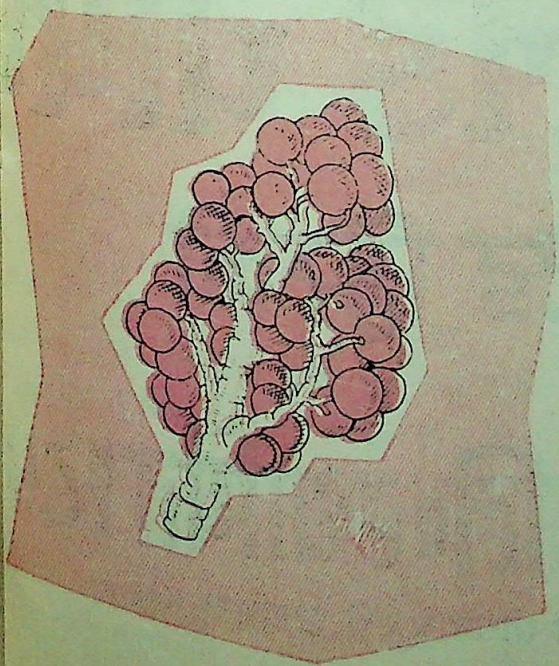

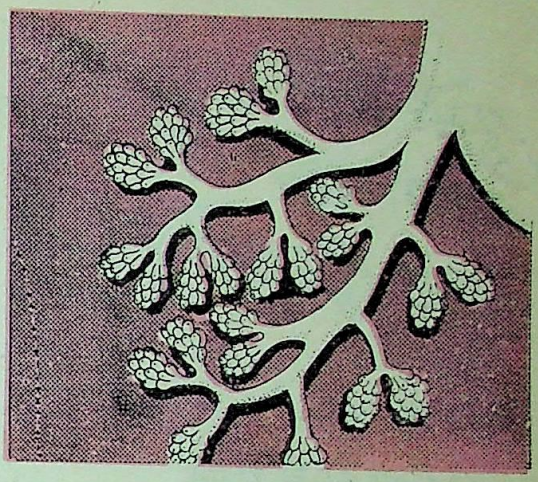

श्वसनी की शाखाएँ वायुकोषों सहित

उपवास के पश्चात् का आहार

तीनों समय के उपरोक्त आहार की मात्रा उपवास के पश्चात् कम से कम तीन दिन तक रखना आवश्यक है। इन्हीं दिनों एक-एक करके क्रमशः स्टार्च और प्रोटीनयुक्त आहार, रोटी, दाल तथा पनीर आदि बढ़ाने चाहिए। अधिक मात्रा में दूध का उपयोग ब्रोन्काइटिस के रोगी को हानिकारक सिद्ध होगा। संतुलित भोजन का क्रम ६ या ७ महीने तक निभाना अधिक लाभप्रद रहेगा। यह ध्यान देने योग्य है कि मिठाई आदि का प्रयोग न किया जाए और ताजा फलों का पहला क्रम सुबह के नाश्ते में और दोपहर के खाने के बाद बराबर चलता रहे।

यह २-३ दिन का लघु उपवास और उपवास के बाद फल तथा सलाद का आहार महीने में एक बार तब तक करते रहना चाहिए जब तक श्वसन-तन्त्र हलका और स्वस्थ न हो जाए।

उपरोक्त उपचार प्रारम्भ करनेवाले दिन से गुनगुने पानी से नित्य-प्रति स्नान करना चाहिए। स्नान का पानी कभी अधिक गर्म न होना चाहिए। गुनगुने पानी के अन्त में सुहाते-सुहाते ठण्डे पानी में भीगा मोटा तौलिया निचोड़कर शरीर को रगड़कर

[शेष पृष्ठ ५० पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
याद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित

जब अतिथि आयें
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए

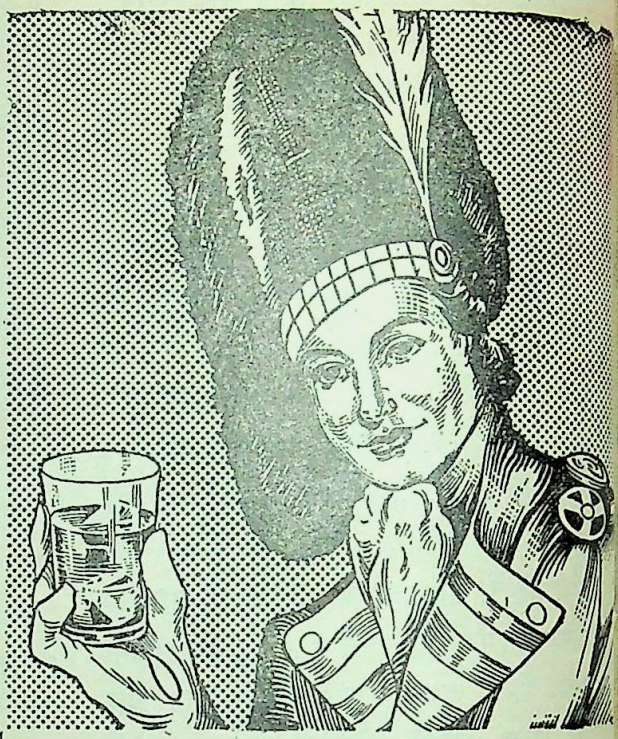

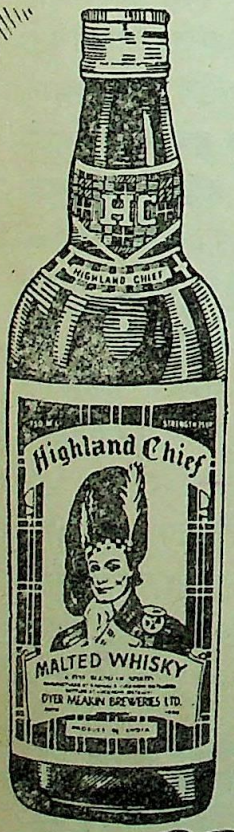

प्रस्तुत कीजिए

हाईलैंड चीफ

माल्टेड ह्विस्की

डायर मीकिन ब्रूअरीज़ लि० स्थापित १८

बोतलों में लखनऊ डिस्टिलरी एवं सोलन ब्रूएरी द्वाराभरा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

तोप, जो आग बुझायेगी !

तेल-उत्पादक क्षेत्रों से मीलों लम्बी पाइप लाइन द्वारा तेल को परिवहन केन्द्र तक पहुँचाया जाता है। उसमें कुछ स्थलों पर ऐसे केन्द्र बनाये जाते हैं जहाँ एक स्टोरेज टैंक और उसके नीचे गहरे विशाल खाली कुएँ रहते हैं। ऐसे एक केन्द्र से कुछ दूर एक तोप को गोलाबारूद से तैयार रखा जाता है। यदि वह टैंक आग पकड़ ले तो परिणाम की भयंकरता का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। अतः उस अवसर पर तोप फौरन दाग दी जाती है। तोप किसी को सहायतार्थ संकेत करने के लिए नहीं, सीधे आग के ऊपर ही दागी जाती है। गोले को ऐसे निशाने पर दागते हैं कि वह कुएँ और टैंक की संयोजक प्लेट को तोड़ देता है। फलतः आग का विस्तार बढ़ने से पहले ही टैंक का सारा तेल नीचे कुएँ में चला जाता है और असहाय आग स्वयं समाप्त हो जाती है।

यह पेड़ पहले हवा में उगता है, तब भूमि में जमता है

हवाई द्वीप (प्रशान्त महासागर स्थित) में ओहिया लेहुआ (Ohia Lehua) नामक यह वृक्ष एक ऐसे बीज से उत्पन्न होता है जो फर्न के वृक्ष की ऊँची डाल पर टिका होता है। वहीं से अंकुर फूटकर कोमल तन्तु नीचे को लटकते हैं और क्रमशः भूमि तक पहुँचकर जड़ जमाने लगते हैं। धीरे-धीरे बल पाकर ये शाखें और तने का रूप ले लेते हैं। कालान्तर में वह फर्न का वृक्ष समाप्त हो जाता है और यह वृक्ष खड़ा रहता है।

चूहों का सगुन काम कर गया !

अमरीका के ओहायो बन्दरगाह पर एक जहाज माल से खाली किया जा रहा था। कुछ यात्री तथा खलासी अभी जहाज में ही थे कि अन्दर से दो चूहे सरपट भागकर रस्सों द्वारा किनारे पर कूद गए। यह देखकर तीन वहमी खलासी भी जहाज से उतरकर दूर टहलने लगे। एकाएक जहाज ने एक विस्फोट से साथ आग पकड़ ली और कुछ भी न बचाया जा सका। वे ही तीन खलासी सकुशल बचे थे !

अण्डा या तरबूज ?

इस चित्र से प्रतीत होता है कि यह बालक इस तरबूज का एक बड़ा हिस्सा अपने लिए पाने की लालसा में बैठा है। वास्तविकता कुछ और ही है। ईप्योरनिस (*aepyornis*) नामक दस फुट ऊँचे शुतुरमुर्ग का यह विशाल अण्डा है। वह शुतुरमुर्ग २०० वर्ष पहले मेडागास्कर में पाया जाता था। आकार में यह मुर्गी के १५० अण्डों के बराबर है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्हॉन बेयर्ड

गुणाकर मुले

आज तो रेडियो का प्रचार घर-घर हो गया है। बहुत कम लोग होंगे जो रेडियो से परिचित न हों, परन्तु ऐसे लोगों की कमी नहीं जिन्होंने अभी तक टेलीविजन का नाम भी न सुना हो। देखने की तो बात ही बहुत दूर है। हमारे देश में टेलीविजन अभी केवल प्रायोगिक रूप से ही गुजर रहा है। आज आपको उस महान् व्यक्ति का परिचय कराएँ जिसके अथक प्रयासों द्वारा टेलीविजन का एक समय का दुरूह स्वप्न सहज यथार्थ बन सका है।

वह व्यक्ति था ज्हॉन बेयर्ड। १८८८ में स्काटलैण्ड के हेलेन्सबर्ग नामक गाँव में उसका जन्म हुआ। किशोरावस्था तक उसका अधिकांश समय विद्युत यन्त्रों के विविध प्रयोगों में ही बीता। उसने अपने ही काम-चलाऊ साधनों से एक टेलीफोन तैयार कर लिया था जिस पर अपने पड़ोसी मित्रों से बातचीत करता था। पिता स्काटलैण्ड चर्च के धर्म प्रचारक थे और चाहते थे कि पुत्र ज्हॉन भी उनका अनुसरण करे परन्तु ज्हॉन तो ग्लासगो के रायल टेकनिकल कालेज में पढ़ना चाहता था। आखिर जीत उसी की रही और उसे ग्लासगो विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए भेजा गया।

प्रथम महायुद्ध के दिनों में उसे बीच में अध्ययन छोड़ना पड़ा। स्वास्थ्य ठीक न रहने से उसे नौकरी भी नहीं मिली फलतः उसे स्काटलैण्ड की जलवायु से दूर कैरीबियन के ट्रिनिडाड द्वीप में रहना पड़ा वहाँ उसने एक जैम फैक्ट्री भी खोली किन्तु जल्द ही उसे समेटकर स्वदेश लौटना पड़ा इंग्लैण्ड में उसने अनेक प्रवृत्तियों में अपना मन लगाना चाहा, किन्तु उसके विज्ञान प्रिय मस्तिष्क को कहीं भी चैन न मिला। टेलीविजन का स्वप्न उससे पहले कभी का देखा जा चुका था किन्तु वास्तविकता की ओर किसी ने भी प्रयास नहीं किया था। वह कल्पना इसके मन में रह-रहकर करवटें ले रही थी। काश, कुछ ठोस चीज सामने लाया जा सके!

ज्हॉन से वर्षों पहले

१८७५ में एक अमरीकन वैज्ञानिक घोषित कर चुका था कि मानव-नेत्र की रचना के आधार पर दृश्यपट-टेलीविजन तैयार किया जा सकता है। ध्वनि को नियन्त्रित आवेगों (impulses) द्वारा प्रसारित किया जा सकता है, किन्तु चित्र प्रसारित करने के लिए अत्यन्त लघु तरंगों की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक कठिनाइयाँ थीं। १८८३ में एक जर्मन वैज्ञानिक पाल निप्कोव ने सुझाया कि सम्पूर्ण चित्र को एक ही साथ प्रसारित करने की बजाय एक-एक तत्त्व द्वारा एक के बाद एक भागों में प्रसारित किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रसारण-गति ऐसी हो जो दर्शक की दृष्टि चित्र के भागों को एक सम्पूर्ण चित्र के रूप में ग्रहण कर सके। संक्षेप में निप्कोव की सूचित विधि इस प्रकार थी।

एक ऐसी डिस्क बनाई जाए जिसमें सर्पिल रूप में छिद्र किये गए हों। उस डिस्क को घुमाते हुए सम्पूर्ण चित्र को एक ही आवेग द्वारा संचारित करने पर सफलता मिल सकती है। तदनुसार ही ज्हॉन बेयर्ड ने गत्ते की डिस्कें बनायीं। जहाँ-तहाँ से बिजली का पुराना सामान, मोटर आदि अपनी प्रयोगशाला में ले आया। पेट काट-काटकर पैसे बचाता और प्रयोगों के लिए सामग्री जुटाता रहता। पहली बार १९२४ में एक क्रास का प्रतिबिम्ब प्राप्त करने में बेयर्ड को सफलता मिली। लन्दन जाकर उसने अपने उस प्रयोग का प्रदर्शन भी किया। उस समय तो उसकी सफलता ने उसे काफी प्रशंसा दिलाई किन्तु वह प्रशंसा अल्पजीवी ही रही और शीघ्र ही लोग उसे भूल गए।

अब बेयर्ड को अपने प्रयोगों की गति बढ़ाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ी। सहायता के लिए उसने बहुत हाथ-पाँव मारे किन्तु तत्काल सफलता कहीं नहीं मिली। अतः उसने 'टेलीविजन लिमिटेड' नामक एक कम्पनी खड़ी की जिसमें उसके कुछ मित्रों ने ५०० पौंड के शेयर भी खरीदे। प्रारम्भ में उसने चित्र के पात्र के लिए मानव-सिर का एक लकड़ी का माडल बनाया। उसका उसने नाम भी मि. बिल रख दिया। वह माडल ही उसका सच्चा साथी था। २ अक्टूबर, १९२५ को उसे माडल के प्रतिबिम्ब में नाक, आँख सहित चेहरा स्पष्ट दिखाई दिया। इससे उत्साहित होकर अधिक बड़े माडल के लिए वह प्रयोगशाला से बाहर आया और सड़क पर खेलते हुए विलियम टेन्टोन नामक एक लड़के को अन्दर ले गया। उसे बिल के स्थान पर बिठाकर स्वयं प्रतिबिम्ब देखने के लिए उधर को गया तो पर्दे पर कुछ भी नजर न आया। इधर आकर देखा तो पाया कि कौतुहलवश वह लड़का अपनी जगह से हट गया था। उसे पुनः ठीक से बिठाया और पारिश्रमिक के रूप में कुछ पैसे भी दिये। इस बार के प्रयोग में रिसीवर पर लड़के का चेहरा स्पष्ट दिखाई दिया। इस प्रकार विलियम टेन्टोन प्रथम जीवित व्यक्ति था जिसका चेहरा टेलीविजन पर देखा जा सका।

बेयर्ड की इस सफलता की पुष्टि करने के लिए अनेक वैज्ञानिक उसकी प्रयोगशाला में आए। संसार के उस प्रथम टेलीविजन-प्रयोग ने अमरीका को भी आकर्षित किया। 'रेडियो न्यूज' नामक प्रमुख पत्र ने अपने प्रतिनिधियों का एक जाँच-कमीशन भेजा। कमीशन की घोषणा इन शब्दों में आज भी स्मरणीय है: 'बेयर्ड को टेलीविजन-प्रयोगों में पूर्ण सफलता मिली है।'

इस प्रसिद्धि पर उसका एक पुराना मित्र कैप्टन ओलीवर जार्ज हचिन्सन आर्थिक सहायक तथा साझीदार के रूप में सामने आया। जल्द ही बेयर्ड की वह छोटी सी प्रयोगशाला लन्दन के मोटोग्राफ हाउस में प्रतिष्ठापित हो गई। अब अर्थाभाव न रहने से नया उत्साह लेकर बेयर्ड अपने काम में जुट गया। प्रकाश किरणों की अपेक्षा इन्फ्रारेड किरणों के प्रयोग से अन्धकार में भी वस्तुओं का संचारण सम्भव हो गया। १९२८ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

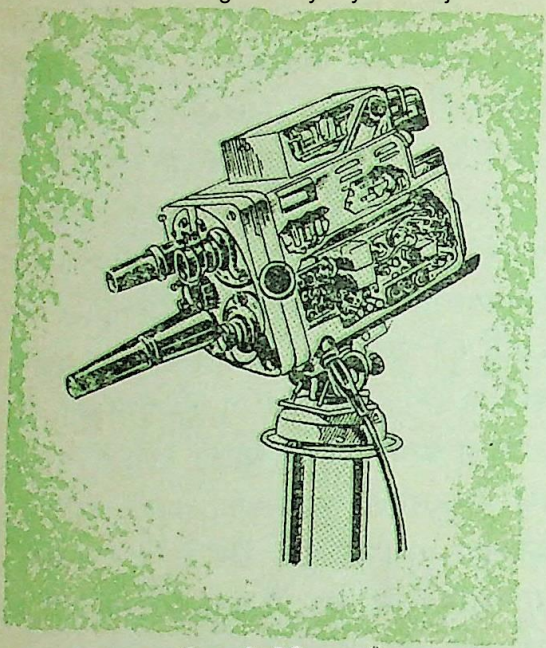

आधुनिक टेलीविजन कैमरा

बेयर्ड को उल्लेखनीय और असाधारण सफलता मिली। उसने अपने माडल का प्रसारण अतलांतिक महासागर के पार, हर्स्टडाले (न्यूयार्क) के स्टेशन पर किया तो वहाँ वह रिसीवर पर सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया गया। इस पर 'न्यूयार्क टाइम्स' ने ९ फरवरी, १९२८ को प्रशस्ति लिखी :

'मार्कोनी द्वारा महासागर-पार 'एस' (S) के अक्षर को संचारित करने की जो महान् सफलता थी उसी कोटि में बेयर्ड की इस सफलता को निस्संकोच रखा जा सकता है।'

उसी वर्ष बेयर्ड को रंग-संचारण में भी सफलता मिली। उसके द्वारा संचारित किया गया मानव का चेहरा पहले पीला सा दिखाई दिया, बाद में उसकी जीभ का गुलाबी रंग भी दिखा और फूलों के गुच्छे के रंग भी बिलकुल स्पष्ट थे।

बेयर्ड के इन सफल प्रयोगों के बावजूद बी.बी.सी. (B.B.C.) ने व्यावसायिक पैमाने पर प्रोत्साहन नहीं दिया। बेयर्ड को इसकी चिन्ता नहीं थी। वह तो अपने टेली-विजन सेट पर संचारण करता ही रहा। दूसरी ओर अमरीका में भी जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी, अमरीकन टेलीफोन एण्ड टेलीग्राफ कम्पनी तथा पेन्किन्स कम्पनी इस दिशा में अपने अलग प्रयोग करती रहीं। न्यूयार्क और सान्फ्रान्सिस्को में दो विशाल टेली-विजन स्टेशन खड़े किये गए, तब कहीं १९३० में बी.बी.सी. ने इनका अनुकरण किया और अपने यहाँ भी टेलीविजन स्टेशन स्थापित किया।

जर्मनी और अमरीका में स्वतन्त्र रूप से टेलीविजन-यंत्रों में संशोधन होते रहे। बेयर्ड को यद्यपि जनता और पत्रों ने काफी सम्मान दे रखा था, वैज्ञानिक जगत अभी उसकी ओर से उदासीन ही था। १९३५ में बड़े विलम्ब से इण्टरनेशनल फैकल्टी आफ साइंस ने बेयर्ड को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया और एडिनबरा की रायल सोसायटी ने उसे अपना फेलो बनाया।

अवकाश प्राप्त करके बेयर्ड इंग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे एक काटेज में रहने चला गया। वहाँ भी जीवन के अन्तिम दिनों-१९४६ तक कलर-टेलीविजन (रंगीन) पर प्रयोग-करता ही रहा। यद्यपि आज उसके प्रारम्भिक उपकरणों का स्थान नये-नये यंत्रों ने ले लिया है, फिर भी टेलीविजन को स्वप्न-जगत से सत्य-जगत में ले आने का श्रेय तो बेयर्ड ही को है। टेलीविजन-जगत में बेयर्ड का नाम अमर रहेगा।

कबूतर का कलेजा हृदय चिकित्सा में

पश्चिम जर्मनी के चिकित्साविदों ने कबूतर के कलेजे से एक ऐसा सीरम तैयार किया है जो हृदय-रोगों में आश्चर्यजनक रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ है। कबूतर को दवा मिश्रित दाने खिलाकर बेहोश किया जाता है, तत्पश्चात् शल्य-क्रिया द्वारा उसका कलेजा निकाला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

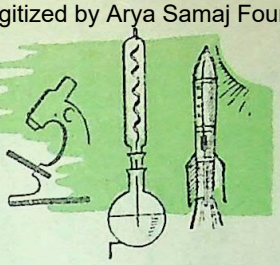

संश्लिष्ट पदार्थों से निर्मित भवन

संश्लिष्ट पदार्थों द्वारा प्रयोगस्वरूप एक छोटा सा मकान मास्को में बनाया गया है। उक्त मकान के डिजाइनर यूरी दिचोविची ने अल्यूमिनियम, कांच, हलके कंक्रीट तथा प्लास्टिक जैसे पदार्थों से मकान बनाने का यह प्रथम सफल प्रयोग किया है। कल्पना कीजिए, आप इस मकान का स्नानागार उठाकर चाहे जहाँ ले जा सकेंगे क्योंकि उसका वजन केवल १३-१४ किलोग्राम होगा! इस मकान में दो कमरों का एक फ्लैट और तीन कमरों का दूसरा फ्लैट है। अनेक प्रकारों में सामान्य मकानों के जैसा होते हुए भी इसकी साज-सज्जा भिन्न है। रोशनदान, फर्श, पानी के तथा गटर के पाइप आदि अधिकतर उपकरण प्लास्टिक के बने हैं। पाँच मंजिल का दूसरा मकान निर्माणाधीन है।

रक्त वाहिनियों की मरम्मत और नया रसायन

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक ऐसा नया रासायनिक गोंद तैयार किया है जो रक्त वाहिनियों की सिलाई के पश्चात् सिलाई के छिद्रों से रक्त-प्रवाह को रोककर घावों को शीघ्र भरने में सहायता करेगा। पोलियरथेन प्रोपोलीमर्स नामक एक कृत्रिम राल से बना हुआ यह पदार्थ रक्त वाहिनियों के छिद्रों को बन्द करता है। साथ ही, लचीला भी इतना है कि हृदय की धड़कन के साथ संकोचन और विमोचन की क्रियाओं में बाधा नहीं डालता। अब तक प्रयुक्त होनेवाले विविध पदार्थों में यह क्षमता न होने से प्रायः ही जोड़े गए स्थलों में सूजन आ जाती थी। यह पदार्थ न केवल रक्त वाहिनियों की मरम्मत में बल्कि हृदय तथा मस्तिष्क की भी शल्य चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

साठ पशुओं की डेरी का संचालन केवल एक व्यक्ति द्वारा

पश्चिम जर्मनी के अल्लिगाव ग्राम के एक किसान फ्रेडरिक बेर्नहार्ड की आश्चर्य-जनक उपलब्धि की यह कहानी है। इनके फार्म पर अधिकांश कार्य यन्त्रों द्वारा होने पर भी कुछ समय पूर्व तक पशुओं को चारा-पानी देना, दुहना, गोबर उठाना आदि कार्यों के लिए आदमी रखने पड़ते थे। अब सारा काम स्वयं कर लेने पर भी इन्हें इतना अवकाश मिल जाता है कि अतिथियों का स्वागत कर सकें तथा घूमकर उन्हें अपनी डेरी दिखा सकें। इसका रहस्य उनके द्वारा आविष्कृत एक ऐसी विशाल यान्त्रिक व्यवस्था में है जिसने उनके फार्म को दूर-दूर के किसानों तथा गोपालकों के लिए आकर्षण बना दिया है। वह बृहत् यन्त्र अपने यान्त्रिक हाथों द्वारा मनों वजन के घास-चारे को एक फुंकनी में डालता है। उसी में अनाज की भी आवश्यक मात्रा मिलाकर आग-पानी पर उसे औटाता है। फलतः जो चारा तैयार होता है वह सामान्य की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तथा बगैर दुर्गन्ध दिये अधिक दिनों तक ठहर सकता है। पशुओं का गोबर भी इसी तरह जहाँ भी गिरता है वहीं से ढालू कंक्रीट के मार्ग द्वारा नीचे एक गढ़े में एकत्र हो जाता है और इस प्रकार गौशाला के मार्ग सफाईदार बने रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरब का चुम्बक मसाले

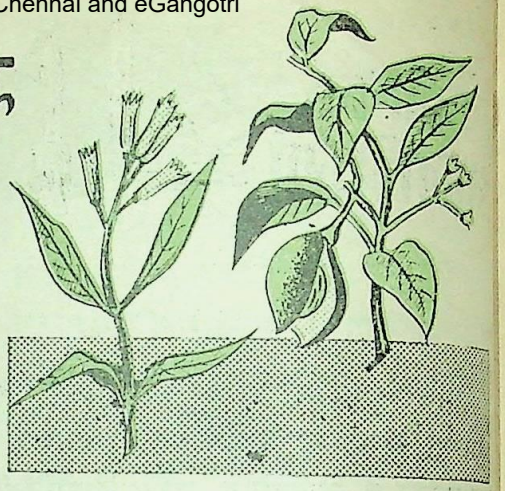

राजेन्द्रकुमार

पृथ्वी का चुम्बक उसका गुरुत्वाकर्षण है जो प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचता है। यह एक ऐसा सत्य है जो ज्ञात तो सबको है किन्तु स्थूल रूप से नजर किसी को नहीं आता। यह बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि १६-१७वीं शताब्दी के मध्य-काल में पृथ्वी का पूरब, एक चुम्बक स्वरूप ऐसा ही प्रबल आकर्षण रहा था जो पश्चिम के लोगों को अपनी ओर खींचे जा रहा था। पूरब के प्रशान्त महासागरीय द्वीपसमूहों में मलक्का (मलाया-समूह) और ईस्ट इण्डीज दो ऐसे प्रमुख देश थे जिनके मसाले पश्चिमी लोगों के लिए सबसे बड़े आकर्षण थे। यथार्थ तो यह है कि उनके लिए मसाले प्राप्त करने का एकमात्र साधन भूमि मार्ग ही था। जहाजों में मसाले उन टापुओं से एशिया के पूर्वीय तट तक ही आ पाते थे। शेष यात्रा तो ऊँट के काफिलों द्वारा समूचा एशिया लाँघकर अरबस्तान तक पूरी करनी पड़ती थी। वहीं से यूरोप के देश मसाले प्राप्त करते थे। इस प्रकार भूमि मार्ग का एकाधिपत्य होने के कारण समुद्री मार्गों की खोज के लिए होड़ सी मची हुई थी। कोलम्बस और अन्य न जाने कितने नाविक अपने-अपने देशों से निकल पड़े थे! उन्हीं में एक स्पेनिश नाविक फर्डिनन्ड मैगेलन भी था जो अपने देश, स्पेन के सम्राट् द्वारा अपनी ऐतिहासिक यात्रा पर १५१९ में निकल पड़ा था। यद्यपि वह स्वयं यात्रा के दौरान में आततायियों द्वारा मारा गया था, तथापि तीन वर्ष के बाद जब पाँच में से केवल एक ही जहाज सकुशल स्वदेश लौटा तो उसमें लाए हुए मसाले ने सम्राट् को घाटे में नहीं रहने दिया। शेष चारों जहाजों का नुकसान तथा यात्रा का पूरा खर्चा काटकर भी काफी धन की प्राप्ति हुई थी।

युद्ध आदि की जड़, ये मसाले

मसालों के उन पूर्वीय देशों तक पहुँचने के जल-थलीय मार्गों पर एकाधिपत्य जमाने के लिए समय-समय पर न केवल ऐतिहासिक विश्व-यात्राएँ ही की गयीं, बल्कि विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्ध भी होते रहे। फलस्वरूप भूमध्य सागरीय मार्ग पर कभी किसी का, कभी किसी का अधिकार रहा। १५-१६वीं शताब्दी तक अरबस्तान का प्रभुत्व रहने के पश्चात् इटली के वेनिस बन्दरगाह का सितारा चमका। तत्पश्चात् अफ्रीका का चक्कर लगाते हुए, केप-आफ-गुडहोप होते हुए उस लम्बे मार्ग का द्वार खुल जाने पर पहले हालैण्ड फिर पुर्तगाल के भाग्य का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजा खुल गया। उस एकाधिपत्य को चुनौती देने के लिए ही १६०० में इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ प्रथम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी।

यह सब क्यों ?

उन दिनों खाद्य-संरक्षण (food preservation) के लिए आज के जैसे वैज्ञानिक साधन तो थे नहीं ! आमिष तथा अन्य खाद्य पदार्थ कुछ ही दिन रखे-रखे खराब हो जाते थे, फेंक देने योग्य हो जाते थे। अतः उनके संरक्षण के लिए मसालों की आवश्यकता पड़ती थी। मसालों द्वारा वस्तुओं का स्वाद बढ़ जाता है तथा उस स्वाद की दृष्टि से मसाले अनिवार्य हैं, यह तो आज के युग की बात है। उन दिनों स्वाद जैसी चीज को आज का सा महत्त्व नहीं दिया जाता था।

अन्य प्रयोजन भी

मसालों का महत्त्व स्वाद से अधिक सुगंध के लिए रहा है। इनके प्रयोग से खाद्य वस्तु की कोई दुर्गन्ध नहीं रह पाती। साथ ही, मुँह और श्वास सुगन्धित होकर स्वयं को और निकट बैठनेवालों को भी आह्लादित करते हैं। एलिजाबेथ के समय में धनीमानी और राजघराने के लोग अपने कमरे में सुगन्धित गेंदें लटकाए रखते थे। वे गेंदें न होकर सन्तरे होते थे जिनमें आकर्षक डिजाइन से लौंगें खोंसी रहती थीं। उन्हें पामेण्डर-बाल (Pommander Ball) कहते थे। इसी प्रकार कुछेक पूर्वकालीन एशियाई प्रदेशों में भी यह राज्यादेश था कि सम्राट के सम्मुख बात करते समय मुँह में लौंग अवश्य रखी जाए जिससे बात के साथ वात (श्वास) भी सुगन्धित होकर सम्राट तक पहुँचे। कुछ मसालों में सुगन्ध उनमें निहित तेल-भाग के कारण होती है। उदाहरणार्थ लोबान और गुगल को मन्दिर-मस्जिद में जलाए रखने का अभिप्राय यही है कि उनकी सुगन्ध वातावरण को शुद्ध बनाए रखे। इतिहास प्रसिद्ध शीबा की साम्राज्ञी जब सम्राट् सोलोमन से भेंट करने गई थी तब प्रमुख भेंटस्वरूप मसाले ही ऊँटों के काफिले पर लादकर ले गई थी।

कुछ प्रमुख मसाले

इन मसालों के पेड़-पौधों की सर्वप्रथम विशेषता तो यह है कि सभी मसालों के लिए पेड़ का एक ही भाग काम में नहीं आता। किसी की अधखिली कली काम आती है तो किसी का फल; किसी का फूल, तो किसी की केवल पत्तियाँ; किसी के तने का छिलका, तो किसी की जड़ें ही। कालीमिर्च बेल के रूप में उगती है। यह मुख्यतः ईस्ट और वेस्ट इण्डीज, भारत, मलाया, सियाम, तथा मलाबार में उपजायी जाती है। मलाबार की सबसे श्रेष्ठ होती है। इसी परिवार की सफेद मिर्च इसी बेल से प्राप्त की जाती है। अन्तर केवल तोड़ लेने का है। काली मिर्च के दाने पहले उतार लिये जाते हैं और सफेद मिर्च के कुछ समय बाद।

पामेण्डर-बाल

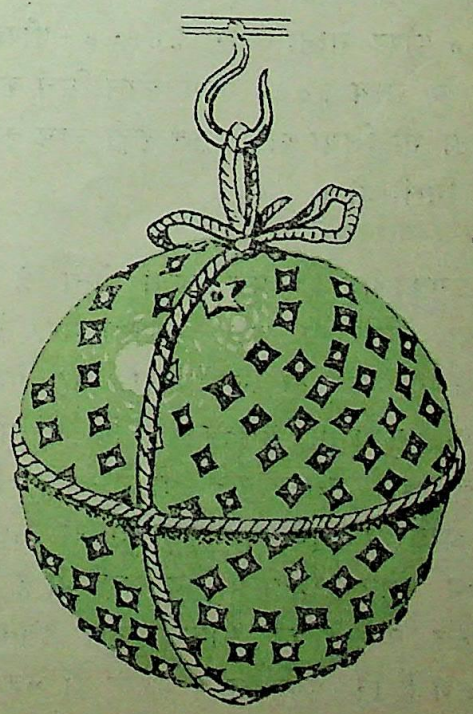

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालीमिर्च की एक डाल

काली मिर्च से प्राचीन ग्रीक-निवासी भली-भाँति परिचित थे। मध्य-युग में मूल्य की दृष्टि से सोने-चाँदी के पश्चात् इसी का स्थान था। वेनिस और जिनेवा ने तो इसी के बल पर अपार धन अर्जित किया था। उन दिनों सोने-चाँदी तथा सिक्कों के अभाव में आयात-कर की वसूली इसी को लेकर की जाती थी। एक ऐतिहासिक उल्लेख के अनुसार सन् ४०८ में रोम से अपनी सेना का घेरा उठाने के लिए गोथिक सम्राट् ने ५००० पौण्ड सोना और ३०००० पौण्ड चांदी के साथ ३००० पौण्ड कालीमिर्च का खजाना भी लिया था! तब कहीं रोम को मुक्ति मिली थी।

जायफल-जावित्री

इसका पेड़ २५ फुट ऊँचा होता है। एशिया, अमरीका और मेडागास्कर में अधिकतर उपजाया जानेवाला यह पेड़ मलाया, सुमात्रा, मलक्का आदि में भी प्रचलित है। इसका फल तो जायफल है और अन्दर के गूदे को जकड़े हुए जो लाल रंग का खोल रहता है, वह जावित्री है। जायफल के तेल का औषधीय गुण इतना विलक्षण है कि पूर्वकाल में शरीर या चेहरे के दाग मिटाने के काम आता था। नो अवस्था में इसका गूदा एक प्रिय मिष्ट खाद्य गिना जाता है। जावित्री काफी गर्म होती है। इसे चावलभर एक पान में रखकर खाने पर सिर भन्ना जाता है। इसका भी तेल अत्यन्त गुणकारी है।

दालचीनी

इसका ३० फुट ऊँचा पेड़ मलाबार, श्रीलंका, सुमात्रा तथा जमइका में खासकर उगाया जाता है। कुछ अन्य श्रेणी के पेड़ वेस्ट इण्डीज तथा फ्लोरिडा में भी उगाए जाते हैं। रेतीली भूमि इसे अधिक अनुकूल रहती है। इसके तने का छिलका ही दालचीनी है। मसालों के अतिरिक्त अनेक दवाओं में भी इसका उपयोग होता है। इसके बीजों को उबालकर तेल निकाला जाता है। इसकी सुगन्ध बड़ी प्रिय होती है।

जायफल-जवित्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे तम्बाकू के मिश्रणों में भी मिलाते हैं।

अदरख

यह हमारे नित्य प्रयोग की प्रिय वस्तु है। आलू, अरबी की तरह यह पौधे की जड़ का भाग है। सूखने पर इसका नाम सोंठ हो जाता है। इसके निराले स्वाद ही के कारण कहा जाता है—बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद ? स्वाद के अतिरिक्त इसके औषधीय गुण भी अनेक हैं। कैसा भी रुका हुआ कफ और हठीली खाँसी हो, पान के साथ चूसने से अथवा शहद के साथ चाटने से तुरन्त आराम मिलता है। खाने के साथ इसे अनेक रूपों में लेते हैं।

लाल-हरी मिर्च

इसके पौधे अधिक ऊँचाई प्राप्त नहीं करते। कुछ पौधों में तो हरी मिर्च ही सूखने पर लाल हो जाती है और कुछ पौधे अलग ही लाल मिर्च के होते हैं। इसके छिलके और बीज, दोनों में अत्यधिक तेजी होती है। यथार्थ में खाद्य वस्तु का स्वाद बढ़ाने का सर्वाधिक श्रेय मिर्च को ही रहता है। सुगन्धिकारक मसाले इसके बाद आते हैं।

यह है 'एक में अनेक' (Allspice)। कहने को एक किन्तु अनेक मसालों की मिली-जुली सुगन्ध देता है

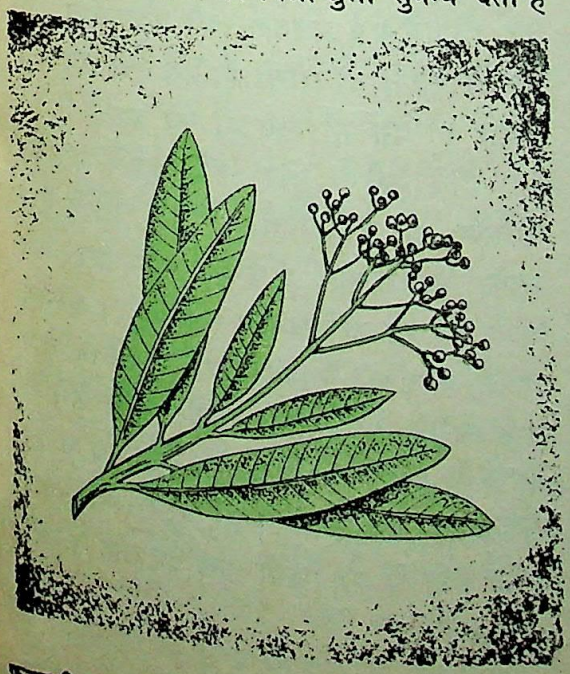

लौंग का पौधा

लौंग

यह बारहमासी पौधा है। दक्षिणी फिलिपाइन, मलक्का तथा ब्राजील इसके मुख्य उत्पादक हैं। इसके पौधे में आकर्षक नन्हें गुलाबी फूल लगते हैं और इसकी पत्ती-पत्ती से मनोरम सुगन्ध आती है। यह पौधे का कली-भाग है। इसे खिलने से पहले ही उतार लेते हैं क्योंकि अधिक पक जाने पर इसकी सुगन्ध क्षीण हो जाती है। खाने के अतिरिक्त अनेक पीड़ाओं में यह रामबाण औषध सिद्ध होती है। यह प्रबल कीटाणु-नाशक है। इसका तेल दाँत-डाढ़ के दर्द को दूर करने में सहायक है। कोई भी जहरीला कीड़ा काट जाए तो उस स्थान पर लौंग घिसकर लगा देने से जहर उतर जाता है। स्वाद में इसकी तेजी के कारण इसे भी तम्बाकू के साथ मिलाया जाता है।

एक में अनेक

इस एक ही मसाले में लौंग, इलायची तथा जायफल की स्पष्ट और अन्य मसालों की मन्द सुगंध बसी होने से इसे 'एक में अनेक' (Allspice) नाम दिया गया है। इसका वृक्ष ४० फुट तक ऊँचा उगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मध्य अमरीका, वेस्ट इण्डीज, इंग्लण्ड तथा जापान में मुख्यतः उपजाया जाता है। इसकी अधपकी टेंटियाँ सूख कर अचार बनाने में तथा सूखा मसाला अनेक व्यंजन बनाने में काम आता है।

इलायची

यह अपने पौधे का फल-भाग है। इलायची बड़ी भी होती है और छोटी भी। छोटी ही अधिक प्रिय मानी जाती है। इसके दानों को स्वर्ग की सौगात (Gift of Paradise) भी कहा गया है। सुमात्रा तथा मेडागास्कर के अतिरिक्त यह हमारे देश के दक्षिण में भी उपजायी जाती है। जैसे मसालों के बिना भोजन फीका, वैसे ही इलायची के बिना पान में जान नहीं होती। इलायची का तेल भी एक प्रभावशाली औषध है। दिल की घबराहट में छोटी इलायची को पीसकर शहद के साथ देने पर तुरन्त लाभ होता है। बड़ी इलायची बहुधा गरम मसाले बनाने में काम आती है।

हींग

यही एक ऐसा अनोखा मसाला है जो काबुल में पैदा होता है और दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है। फेरूला फिटिडा (*Ferula Foetida*) पेड़ की जड़ों में से यह गोंद के रूप में निकाला जाता है।

घरेलू उपचारों में इसका उपयोग पेट के अफरे में किया जाता है। कुछ समय पहले इसका उपयोग बेहोशी, उन्माद, दिल का दौरा, मृगी आदि के उपचार में भी होता था, क्योंकि इसकी तीव्र गंध तन्त्रिका-तंत्र पर सीधा प्रभाव डालती है।

यह है कुछ गिने-चुने मसालों की मसालेदार कहानी !

बगैर दवा, सर्दी जुकाम से छुटकारा

[पृष्ठ ३९ का शेष]

पोंछना चाहिए। इससे लाभ यह होगा कि शरीर पर अधिक कपड़े पहिने ही पहिने रहने से त्वचा के रोम-छिद्र जो रुंधे रहते हैं, खुल जाएँगे और शरीर को ताजगी तथा रक्त को नवसंचार मिलेगा।

स्वास्थ्य छुटकारा

सोने के कमरे की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि वायु का आवागमन मुक्त होता रहे। साथ ही कमरे का ताप भी स्थिर रहे। बिस्तर और तकिये यथासम्भव गुदगुदे और मुलायम हों। सिरहाने शहद की शीशी और गुनगुने नीबू के रस की प्याली भी रखी रहे जो बीच-बीच में थोड़ी मात्रा में ली जा सके। गर्म-गर्म फ्लेनल की पट्टी सीने से लिपटी रहेगी तो खाँसी का वेग दबा रहेगा। खाँसी का वेग भी रात ही को बढ़ता है।

सीने और पीठ की हलकी-हलकी मालिश भी बड़ी सहायक सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त दीर्घ-श्वास-प्रश्वास की क्रिया का भी उल्लेखनीय महत्त्व है। सम्भव हो तो प्रातः की ताजी वायु में तनिक तेज चाल चलते हुए गहरी लम्बी साँस लेने से भी लाभ होगा। यदि यह सम्भव न हो तो कमरे की खिड़की ही सुबह खोलकर ताजी हवा में यह क्रिया कुछ देर तक करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौन परिवर्तन

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

एक वह भी समय था जब लोगों ने एक अंग्रेज हवाई सैनिक मि. राबर्ट में हुए यौन परिवर्तन का समाचार अत्यन्त आश्चर्य से पढ़ा था। उन्होंने पढ़ा था कि कल का मि. राबर्ट आज मिस राबर्टा बन गया है। आज तो यह आश्चर्य का विषय नहीं रह गया। आए दिन ऐसे समाचार मिलते ही रहते हैं। प्रकृति के लिए तो यह एक बड़ी सामान्य बात है। अनेक जीव-जन्तुओं में यौन परिवर्तन एक स्वाभाविक क्रिया मात्र है। हाँ, मनुष्य के लिए यह सर्वथा नया क्षेत्र है। विज्ञान के निरन्तर विकास के फलस्वरूप आज यह सम्भव हो सका है कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार यौन परिवर्तन करा ले। इसकी जटिलता समझने के लिए जीव-जन्तुओं के उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे।

जन्तुओं में लिंग परिवर्तन

अनेक एक कोशीय जीवाणुओं में (जिन्हें सूक्ष्मदर्शी के नीचे ही देखा जा सकता है) कोई लिंग-भेद ही नहीं होता। अमीबा (amoeba) और हाइड्रा (hydra) जैसे जन्तु तो अपने शरीर के किसी भी नन्हें भाग से नया सर्वांग-सम्पूर्ण जीव ही बना लेते हैं। पादपों में कुछ अधिक विकसित जीव प्रस्फुटित होकर जनन-क्रिया सम्पन्न कर लेते हैं। केंचुए तथा घोंघे आदि उभयलिंगी होते हैं। परजीवियों (parasites) में, यकृत-कृमि (lever-flukes) तथा फीताकृमि (tapeworms) में तो उभयलिंगी विशेषता इस हद तक पायी जाती है, मानो उन्हें सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त और कुछ काम ही नहीं!

आनुवंशिक नियमों के ज्ञान से पूर्व लोगों

अमीबा में कोई लिंग-भेद नहीं। स्वजनन द्वारा ये अपने शरीर के किसी भी भाग को पृथक करके एक से अनेक हो जाते हैं

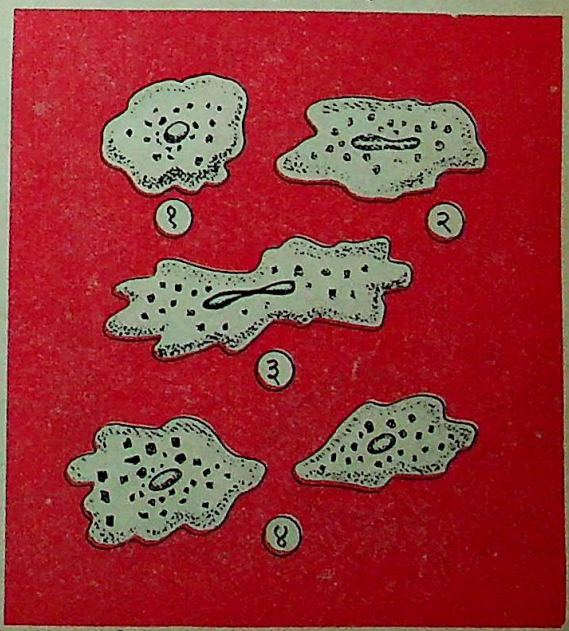

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

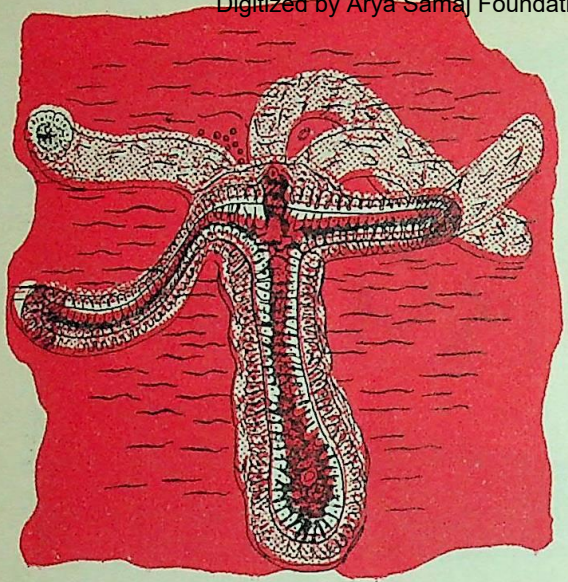

हाइड्रा भी अमीबा की भाँति लिंग-भेद रहित है और अपने किसी भी अंग से नया जीव-निर्माण कर लेता है

का अनुमान था कि भ्रूण का लिंग-भेद माता-पिता के स्वास्थ्य, आयु, भोजन और समागम-काल आदि पर निर्भर है। अब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि लिंग का आधार विशिष्ट गुणसूत्रों (chromosomes) की संख्या और उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर निर्भर है। रासायनिक पदार्थों की सहायता से चेतन किये हुए अण्डे नर-बीज के बगैर भी विकसित कर लिये जाते हैं। कई वर्षों पूर्व जेकिक्स लोयब (Jaques Loeb) नामक एक वैज्ञानिक ने मेंढक आदि के अण्डों से इसी प्रकार पितृहीन सन्तान की रचना की थी। एक बार तो उसे भी विश्वास न हुआ होगा कि उसकी परखनली में उछल रहे शिशु-मेंढक केवल मेंढकी और मैग्नीशियम क्लोराइड की सन्तानें हैं। अब तो प्रयोगों द्वारा यह भी सम्भव हो गया है कि निषेचित अण्डे को एक मादा के शरीर से निकालकर दूसरी मादा के शरीर में प्रवेश कराकर सन्तानोत्पत्ति कराई जा सके तथा अवाहिनी ग्रन्थियों के स्राव भी रवे के रूप में प्राप्त किये जा सकें। उन रवों के द्वारा किसी का भी लिंग-परिवर्तन करना सम्भव है। पुरुषत्व अथवा नारीत्व के लक्षण प्रकट कर देना इन रवों के लिए मामूली बात है। इनकी सहायता से हम एक मोरनी को आकर्षक पंखोंयुक्त मोर में बदल सकते हैं। फोलिक्युलिन (folliculine) द्वारा चूहे में कृत्रिम उत्तेजना

लिंग का आधार गुणसूत्रों (chromosomes) पर है। कोशिका-विभाजन में प्रदर्शित तन्तु जैसी आकृतियाँ ही गुणसूत्र हैं। वंशानुक्रम भी इन्हीं पर आधारित है

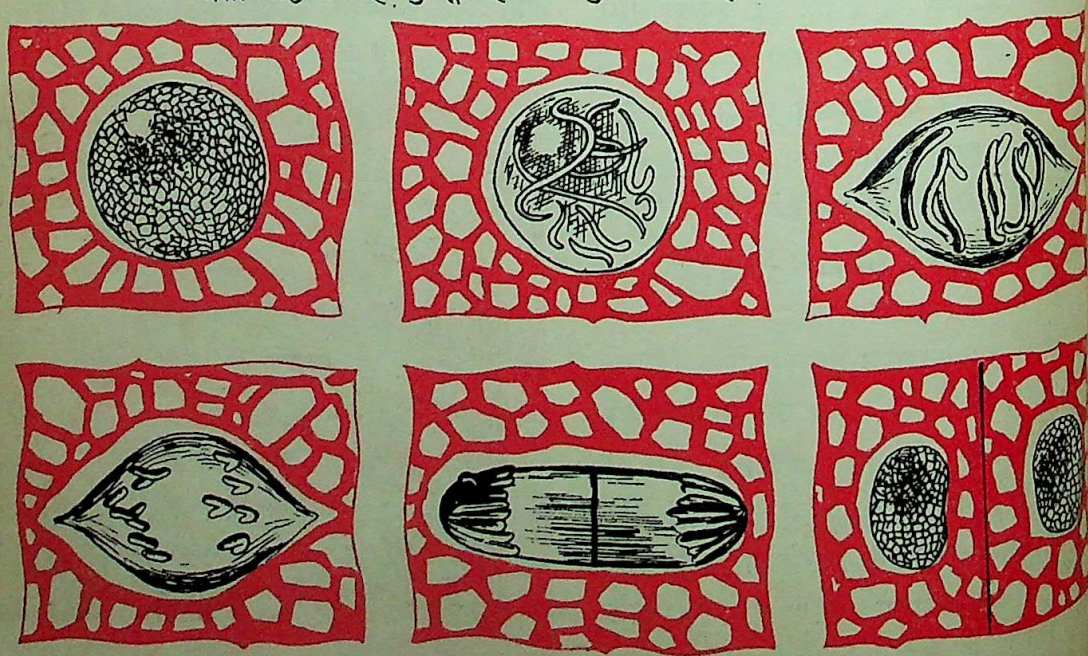

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा की जा सकती है और मुर्गा अण्डे से बाहर आते ही बोल सकता है। प्रोलेक्टिन (prolectin) द्वारा एक ऐसे पक्षी को जो घोंसले पर बैठने के लिए तैयार ही न हो, अण्डों को सेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसी के द्वारा एक मेंढक को, जो तालाब के पास फटकना भी नहीं चाहता, सहवास के लिए मादा की खोज में तालाब की ओर दौड़ाया जा सकता है।

देखा गया है कि सीपी (oyster), क्रेपीड्यूला प्लाना (*crepidula plana*) स्टारफिश (starfish) तथा घोंघे में लैंगिक परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। एसिनवर्ग नामक एक वैज्ञानिक ने दो मछलियों का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जिन्होंने तीन वर्ष की आयु पर ही सन्तानोत्पत्ति बन्द कर दी और कुछ समय तक नर-लक्षणों का प्रदर्शन करती रहीं। परीक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ कि उक्त मछलियों की आयु के हिसाब से उनके अर्द्धविकसित जनद (gonad) में नर-बीज उपस्थित थे। दूसरे वैज्ञानिक हर्म्ज ने इन मछलियों को विभिन्न अवस्था में यौन परिवर्तन करते देखा है। यौन परिवर्तन के मध्य भी ये मछलियाँ सन्तानोत्पत्ति कर सकती हैं। यौन परिवर्तन पूर्ण हो जाने पर मादायें नर बन जाती हैं और अपनी श्रेणी के सामान्य नरों की अपेक्षा शरीर में बढ़ी-चढ़ी रहती हैं। यौन परिवर्तन काल में मछली की अवस्था जितनी अधिक होगी उतने ही उनमें नारीत्व के लक्षण स्पष्ट होंगे।

अनुमान है कि शरीर की आन्तरिक क्रियाओं तथा अंग निर्माण की क्रियाओं में अन्तर आ जाने के कारण यौन परिवर्तन हो जाता होगा। यह भी देखा गया है कि नर से परिवर्तित मादा मछलियाँ सदैव मादा सन्तानों को ही जन्म देती हैं। अन्य प्रयोगस्वरूप एक नर-मेंढक के आधे अण्डों को निषेचित कराया गया और शेष को कुछ समय पश्चात् निषेचित कराने के लिए अलग रख दिया गया। नव्वे घण्टों के बाद देखा गया तो उन अण्डों से पैदा होनेवाले बच्चे सब के सब नर थे। इससे अनुमान लगाया जा सका कि किसी भी प्राणी की स्वाभाविक शरीर क्रिया में हस्तक्षेप करके यौन परिवर्तन कराया जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग किया गया। कुछ अपरिपक्व भ्रूणों को दो-दो की जोड़ी में एक-दूसरे की पूंछ से जोड़ दिया गया। विकसित होने पर देखा गया कि वे सब के सब नर ही नर थे। वैज्ञानिक विट्शी द्वारा किये गए प्रयोग भी इसी की पुष्टि करते हैं।

प्रयोगों के पश्चात् यह निर्धारित किया गया कि प्राणी की स्वाभाविक आन्तरिक क्रिया में हस्तक्षेप करके भ्रूणावस्था के पश्चात् भी प्रौढ़ावस्था में यौन परिवर्तन कराया जा सकता है। इसके लिए दो स्थितियाँ आवश्यक हैं: १. अंग निर्माण क्रिया में परिवर्तन की संभावना तथा

मादा में गुणसूत्रों के २४ समान जोड़े होते हैं जबकि नर में २३ समान और १ असमान होता है। इसी असमान जोड़े में एक x (दायां) और दूसरा y (बायां) होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्य एवं गौण जननांगों में भी परिवर्तन की क्षमता। यदि किसी व्यक्ति में बाह्य तथा गौण जननांग भ्रूण की प्रारम्भिक अवस्था में ही किसी भी उद्दीपन के प्रति उदासीन हो जाते हैं तो उस व्यक्ति में पूर्णतः यौन परिवर्तन सम्भव नहीं।

हर्म्ज ने एक मेंढक को नपुंसक करके काफी समय तक केवल वसायुक्त खाद्य पर रखा तो पाया कि उसकी शुक्रवाहिनी का पिछला भाग गर्भाशय के रूप में परिवर्तित हो चला था और दूसरे अंग भी स्त्रीलिंग का रूप धारण करते जा रहे थे। उचित समय बाद उस नर-मेंढक ने पूर्णतः मादा जीवन ही प्रारम्भ कर दिया। वैज्ञानिक चेम्पी (Chempy) ने भी ऐसे प्रयोगस्वरूप एक घोंघे (triton) को उसके शीतकालीन उपवास के बाद वसायुक्त खाद्य पर ही रखा तो उसने भी मादा के ही लक्षण प्रकट किये। इससे स्पष्ट हुआ कि घोंघे में नर-बीज की क्रिया को उपवास के द्वारा रोका जा सकता है तथा उसमें बाह्य जननांगों का विकास भी नहीं होता। उस अवस्था में वह नपुंसकता का प्रदर्शन करता है। उसके अंग को चीरकर अन्दर देखा गया तो ज्ञात हुआ कि वृषण का प्रतिनिधित्व चर्बी की एक हलकी सी पर्त कर रही थी। इसकी पुष्टि करने के लिए एक अन्य घोंघे को इसी प्रकार उपवास काल के बाद खूब वसायुक्त पदार्थ खिलाया गया। फलस्वरूप उसकी पीठ का गहरा नीला रंग गायब हो गया और उसकी जगह मादा का हलका चितकबरा हरा रंग उभर आया।

रिडल नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने फाख्ता परिवार की एक चिड़िया का यौन-परिवर्तन करते हुए निरीक्षण किया था। उन्होंने देखा कि चिड़िया की उस प्रौढ़ मादा ने १७ जनवरी से १५ अप्रैल के मध्य ११ अण्डे दिए। तत्पश्चात् छः महीनों में उसने तीन बार नर-सहवास भी किया। उस दर्म्यान उसने स्वयं तो अण्डे देना बन्द कर दिया किन्तु दूसरों के अण्डे सेती रही। डेढ़ वर्ष के बाद तो उसकी लैंगिक चेष्टाएं बिलकुल बदल गयीं और वह अपने नर-साथी से स्त्रियोचित व्यवहार की अपेक्षा रखने लगी! अन्तिम अण्डा देने के २२ मास पश्चात् उसे कुछ वृद्ध और निष्क्रिय चिड़ियों के साथ रखा गया तो वहाँ २१ मास पश्चात् क्षय रोग से उसकी मृत्यु हो गयी। उसके शरीर को चीर कर देखा गया तो ज्ञात हुआ कि दोनों वृषण मौजूद थे और गर्भाशय का भाग यकृत तथा तिल्ली के निकट क्षयग्रस्त पड़ा था। उन तीन वर्षों में उसका वजन और आकृति नर जैसी हो चली थी।

वैज्ञानिक क्यू (Crew) ने ऐसी एक मुर्गी का वर्णन किया है जो कई बच्चों की माँ थी और तीन वर्ष की अवस्था में ही क्षयग्रस्त हो चुकी थी। तत्पश्चात् वह नर लक्षणों को अपनाकर दो बच्चों का बाप भी बन चुकी थी!

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि मछलियों, मेंढकों आदि में तो अण्डावस्था में ही यौन परिवर्तन हो जाता है। इनका यह यौन परिवर्तन परस्पर दोनों लिंगों में हो सकता है किन्तु पक्षियों में केवल मादा से नर ही होना सम्भव है। स्तनधारियों में भ्रूणावस्था के उपरान्त पूर्ण रूप से यौन परिवर्तन नहीं हो सकता।

एक समय ऐसा भी आ सकता है जब मनुष्य अपने विज्ञान बल से ग्रीन फ्लाई की भाँति स्व-जनन कर सके, नाटिलस की तरह दूर बैठा-बैठा ही गर्भाधान कर-करा सके, जिफोफरस मछली की तरह प्रचुरता से लिंग परिवर्तन कर सके, केंचुए के समान नवोद्गम की क्षमता प्राप्त कर सके, छिपकली की भाँति टूटे हुए अंगों की जगह नये पैदा कर सके और कंगारू की तरह माँ के पेट के बाहर भी पोषण पा सके!

विज्ञान के लिए यह असम्भव तो नहीं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो,

यह है, चतुर्थ वर्ष का प्रथम अंक। इसमें तुम्हें बहुत कुछ नया और रोचक जानने को मिलेगा। क्या और कैसा पसन्द आया, सो तुम्हारे पत्रों से ही मालूम होगा।

पिछले दिसम्बर और जनवरी के अंक तुम सबों ने बड़े चाव से पढ़े हैं और अनेक लेख तुमने बेहद पसन्द किये हैं, यह तुम्हारे ढेर सारे पत्रों से जानने को मिला है। दिसम्बर अंक ही को लो, सौराष्ट्र के तुम्हारे एक मित्र को 'सांप पैदा हो गया' लेख अत्यन्त रोचक लगा है। इसी प्रकार पटना से एक छात्रा-मित्र ने लिखा है कि जनवरी अंक में 'चन्दमा पर मानव के चरण' बड़ा तथ्यपूर्ण है। पाठिका का यह भी आग्रह है कि चन्द्र-यात्रा सम्बन्धी होनेवाली दिनोंदिन की प्रगति जब-तब विज्ञान-लोक में अवश्य दी जाती रहे।

चण्डीगढ़ से एक नये पाठक-बन्धु ने दिसम्बर अंक का 'दुर्लभ हंसों का जोड़ा' बहुत पसन्द किया है। 'अंकों का जादूगर-गौस' की जीवनी ने भी उसे प्रभावित किया है। अनेक पाठकों ने जनवरी अंक के दो लेख—'काम बड़े, दर्शन छोटे' और 'नये पुराने, पुराने नये होते हैं' सुपाठ्य और बोधगम्य कहे हैं।

पाठकों का यह सूक्ष्मतर अध्ययन और नयी माँग शुभ लक्षण हैं और हमारे विद्वान लेखकों के लिए प्रेरणा-स्रोत भी। विज्ञान-लोक तुम्हारा ही तो है! इसमें क्या-क्या नया चाहते हो, निस्संकोच लिखते रहो।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३५ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

विजयमणि अन्थवाल (२८०) आगरा, चाँदस्वरूप (५३८) आगरा, विजय रस्तोगी (१००८) झाँसी।

द्वितीय पुरस्कार

वेदप्रकाश गुप्ता (२४३) खण्डवा, राजीवकुमार मिश्र (४२३) बलरामपुर, सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, गोपाल माधव (२३७९) मेरठ, मोहिनी शहानी (७८२७) रांची, धर्मवीरसिंह वर्मा (८२००) आगरा, मायादेवी गुप्ता (८६०४) कानपुर, शिवकुमार कोहली (८८३८) आगरा।

तृतीय पुरस्कार

ओमप्रकाश गुप्ता (२४५) खण्डवा, भानुदर्शन एक्का (८८६) राँची, भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा, गिरीशचन्द्र अग्रवाल, (११५७) आगरा, प्रभात सुमनराय एण्डरू (१२२७) जयपुर, गजेन्द्र-पालसिंह (१६०५) मेरठ, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, चन्द्रभूषण गिरोत्रा (३४७१) बम्बई, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, सुरेशकुमार गुप्ता (७१९०) अमृतसर, सुशीला चौधरी (७२३१) राँची, नरेन्द्र बन्सल (७८२८) आगरा, शोभाराम मलेवार (८०४८) तुमसर, अशोककुमार (८४०४) बम्बई।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ३७

नाम .....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

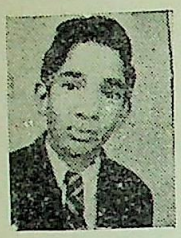

पारसकुमार
(स. सं. ३६२२)

विपिनकुमार
(स. सं. ३६६५)

अब्दुल आशिक
(स. सं. ४१९७)

जेठमल खत्री
(स. सं. ५५३७)

अविनाशचन्द्र
(स. सं. ५७०७)

५५४१ चेतराम (१५) हथनापुर, ४२ रामपदार्थ (१६) सुपौल, ४३ कुमारी सुशीला (१५) रांची, ४४ हरीमोहन (१५) अलीगढ़, ४५ योगानन्द (१२) मंझारपुर, ४६ प्रतापनारायन (१४) लखनऊ, ४७ प्रेमनारायन (१४) लखनऊ, ४८ महावीर प्रसाद (१५) कलकत्ता, ४९ रामस्वरूप (१३) चूरू, ५० आनन्दशंकर (१७) भरौलीकला ५१ नित्यानन्द (१२) जमशेदपुर, ५२ ओमप्रकाश (१३) बघाना, ५३ नरसिंह प्रकाश (१८) राजगढ़, ५४ सर्वेशचन्द्र (१२) कानपुर, ५५ अमरसिंह (१३) तलेन, ५६ कैलाशचन्द्र (१३) तलेन, ५७ विनोद कुमार (१४) गोरखपुर, ५८ गोपीचन्द्र (२२) भण्डारा, ५९ अशोककुमार (१९) विदिशा, ६० ओमप्रकाश आनन्द (१९) बस्ती, ६१ नाथूलाल (१५) अजमेर, ६२ मालती देवी, (११) लखनऊ, ६३ प्रमोदकुमार (१५) पिपरिया, ६४ अरुण कुमार (१३) फिरोजाबाद ६५ विलासचन्द्र (१७) खड़गपुर, ६६ कृष्णचन्द्र (१७) देवरिया, ६७ रसिकलाल (१५) जमशेदपुर, ६८ तुलसीराम (१६) रायपुर, ६९ वाधूमल (१६) कटनी, ७० देवीलाल (१६) अजमेर, ७१ कृष्णलाल (१७) मुरैना, ७२ राजेन्द्रसिंह (१५) वाराणसी, ७३ सन्तोष कुमार (१६) जबलपुर, ७४ राधेश्याम (१७) शिवपुरी, ७५ प्रकाशचन्द्र (१७) शिवपुरी, ७६ राजनारायण प्रसाद, (१४) चम्पारण, ७७ एस. शंकर (१४) जबलपुर, ७८ प्रभात कुमार (१३) दरभंगा, ७९ बल्लभ भाई पटेल (१७) गुंदाला, ८० जनक प्रसाद (१५) जयनगर, ८१ मुरलीमनोहर (१५) मोतीहारी, ८२ शत्रुघ्न (१५) दरभंगा, ८३ सुरेन्द्र कुमार (१३) लखनऊ, ८४ शान्ती देवी (१६) मथुरा, ८५ सूरजप्रकाश (१५) नासिक, ८६ मुहम्मद अनसार हुसेन (१६) इसलामपुर, ८७ मुकेश्वरनाथ (१३) कानपुर, ८८ सत्यनारायण (१५) हिसार, ८९ देवेन्द्रसिंह (९) एटा, ९० राजेन्द्रनाथ (१९) जयपुर, ९१ कृष्णगोपाल (१४) चिड़ावा, ९२ प्रहलाद प्रसाद (१६) करगीरोड, ९३ जमुनाप्रसाद (१४) करगीरोड, ९४ अर्जुनप्रसाद (११) फतेहपुर, ९५ मोहनलाल (१६) शाजापुर, ९६ प्रेमधारी प्रसाद (१५) सिसवा बाजार, ९७ महावीरसिंह (१६) देवरिया, ९८ ब्रिजेन्द्रपाल (१३) लखनऊ, ९९ दामोदरलाल (१०) बकानी, ५६०० कु. कान्तीदेवी (१२) बकानी, १ ज्ञानेन्द्र कुमार (१५) रतलाम, २ अवतारकृष्ण (१२) रांची, ३ देवेन्द्र कुमार (१४) झुंझुनू, ४ कु. सविता (१८) रायपुर, ५ पदमचन्द (१५) भिवानी, ६ गोकर्णसिंह (१०) फरसाली, ७ किशनलाल (१८) लाडनूं ८, सत्यनारायण (१६) ब्यावर, ९ धनीराम (१५) फरूखाबाद, १० कैलाशचन्द्र (१५) लश्कर, ११ तिलकराज (१६) इलाहाबाद, १२ यज्ञवीरसिंह (१२) पटियाली, १३ शैलेन्द्रकुमार (१५) भागलपुर, १४ अजयकुमार (१४) दिल्ली, १५ छगनलाल (१६) भालपरा, १६ विजयकुमार (१७) भागलपुर, १७ प्रदीपकुमार (१४) जलंधर, १८ अशोककुमार (१४) पटना १९ सुरेन्द्रप्रकाश (१७) चन्डीगढ़, २० नियामतउल्ला (१३) आगरा, २१ मगनलाल (१६) रायपुर, २२ महेन्द्रस्वरूप (१९) भिवानी, २३ सुरेन्द्र कुमार (१८) भिवानी, २४ विनोदशर्मा (१७) बनारस, २५ देवेन्द्रप्रसाद (१६) सिवनी, २६ राम-

गुलाम अ
(स. सं. ५

राजकुम
(स. सं. ६

सतीश
(स. सं. ६

सन्तोष
(स. सं. ६

सौ. विद
(स. सं. ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार, दिल्ली, २७ विनोदकुमार (१३) आगरा, २८ श्यामसुन्दर (१५) अमृतसर, २९ कल्यानचन्द (१७) श्योपुरकलां, ३० प्रकाशकुमार (१४) पटना, ३१ अमरनाथ प्रसाद (१५) साहिबगंज, ३२ कमलनारंग (१३) इलाहाबाद ३३ अरविन्दनारंग (११) इलाहाबाद, ३४ हनुमान प्रसाद (११) रांची, ३५ राजेन्द्रसिंह (१५) रामनगर, ३६ विद्यापति (१५) गया, ३७ नरेन्द्रमोहन (१४) दिल्ली, ३८ विनयकुमार (१४) साहिबगंज, ३९ अशोककुमार (१२) वाराणसी, ४० सुराजकुमार (१५) सिवनी, ४१ प्रेमकुमार (१४) चाईबासा, ४२ हरीप्रकाश (११) सुलतानपुर ,४३ उपेन्द्रकुमार (१५) इलाहाबाद, ४४ नारायण (१७) रायगढ़, ४५ राजशरण (८) गया, ४६ मायारानी (१५) लश्कर, ४७ उमाकान्त (१२) दरुआरा, ४८ राजनलाल (१९) गढ़उमराव, ४९ मन्नूलाल (१५) बालोद, ५० सुनील (१२) नैनीताल, ५१ सुरेन्द्र प्रसाद (१८) छपरा, ५२ निर्मलकुमार (१६) विदिशा, ५३ रमेशकुमार (१६) लुधियाना, ५४ हरीप्रसाद (१६) पिपरिया, ५५ कु. पूनम (६) भागलपुर, ५६ जगन्नाथप्रसाद (१४) दरभंगा, ५७ सतीशचन्द्र (१३) परीक्षितगढ़, ५८ राजेन्द्र प्रसाद (१५) लालापुर भदेर, ५९ नलिनकान्त (११) दिल्ली, ६० गोपाल (१५) लोहरदगा, ६१ घनश्यामसिंह (१५) झांसी, ६२ गोपीचन्द (१५) गुलाबपुरा, ६३ पटेल भरतकुमार कुबेर भाई (१६) विरमगाँव, ६४ इन्दुरानी (१६) दिल्ली, ६५ मृत्युंजयसिंह (१४) खमरिया, ६६ कृष्णकुमार (१३) पिथौरागढ़, ६७ अनुपमचन्द्र (९) दिल्ली, ६८ हंसराज (१४) लुधियाना, ६९ जवाहर (१५) शारदाग्राम, ७० सौरीन्द्रनाथ (१५) इलाहाबाद, ७१ नवलकिशोर (१५) कलकत्ता, ७२ आत्माराम (१३) कलकत्ता, ७३ कुमारी प्रतिमा (१६) कलकत्ता, ७४ सुमनकुमार (१६) कलकत्ता, ७५ किशोरलक्ष्मीदास (१५) शारदाग्राम, ७६, शुद्धोदन (१६) पडरौना, ७७ नथमल प्रसाद (१३) झरिया, ७८ राजेन्द्रप्रसाद (१३) खढ़िया, ७९ कमलकिशोर (१४) लोहारदगा, ८० श्यामनारायण (१४) झरिया, ८१ नृपतकुमार (१६) सुजानगढ़, ८२ उमेशचन्द्र (१४) ललितपुर, ८३ अनिलकुमार (१५) भागलपुर, ८४ अखिलेश्वर कुमार (१३) औंगारी, ८५ जगदीश नारायण (१६) नरायना, ८६ उमेश्वर प्रसाद (१३) हरौली, ८७ विजयकुमार (१४) नई दिल्ली, ८८ जगदीशचन्द्र (१६) जमशेदपुर, ८९ विनोदकुमार (१४) गया, ९० शब्बीर हुसेन (१४) महू, ९१ रामजी (१४) दतिया, ९२ भँवरलाल (१६) नरायना, ९३ वेंकटरमण (१५) सक्ती, ९४ रमेशचन्द्र (१६) मथुरा, ९५ मोतीलाल (१६) सुपौल, ९६ महानन्द (१५) रतनपुर, ९७ पुरुषोत्तम (१५) जोधपुर, ९८ इन्द्रमोहनसिंह (१२) इटारसी, ९९ कुमारी उर्मिला (१०) इटारसी, ५७०० अजीतसिंह (१३) इटारसी, १ नरेन्द्रदत्त (१४) भोपाल, २ प्रेमकुमार (१४) उज्जैन, ३ आनन्द बिहारी (१४) मथुरा, ४ शशिरंजन (१४) इलाहाबाद, ५ कुमारी पदमा (९) लश्कर, ६ सानन्द नारायणसिंह (१६) ढेनावागछाला, ७ अविनाशचन्द्र (१७) दिल्ली, ८ प्रेमकुमार (१५) रांची, ९ बद्रीप्रसाद (१४) ब्यावर, १० वी. कृष्ण (१३) जमशेदपुर, ११ रामप्रसाद (१५) कस्तूरबा नगर, १२ दिलप्रसाद (१५) डिगबोई, १३ विनयकुमार (१५) बिलासपुर, १४ मुरारीलाल (१३) धौलपुर, १५ हर्षदराय (१६) करणपुरा।

भगवानदास
(स. सं. ६२१३)

हरीशकुमार
(स. सं. ६२४१)

अनुपमराय
(स. सं. ६२५७)

विजयकुमार
(स. सं. ६६६८)

प्रभात
(स. सं. ६७५३)

महावीरशरणदास
(स. सं. ६७८४)

गौरीशंकर
(स. सं. ७०६०)

सरस्वती दयासिंह
(स. सं. ७१७३)

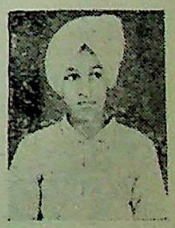

कुलविन्दरसिंह
(स. सं. ७३०७)

आद्याप्रसाद
(स. सं. ७४३२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३७

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्त
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्त
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्त

अन्तिम तिथि : २८ फरवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग ले का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिख पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३७ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्त २८ फरवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३७ के प्रश्न

१. सामान्यतः विद्युतवाहक (conductor) का प्रतिरोधन (resistance) ताप के बढ़ने के साथ बढ़ता है किन्तु उसे क्या कहेंगे जिसका प्रतिरोधन उलटे घटता हो ? यह विशेषता किस धातु से निर्मित विद्युतवाहक में पायी जाती है ?

२. वनस्पतियों के लिए मैलिक हाइड्रेजाइड की उपयोगिता क्या है ?

३. कौन सा पेड़ अधिकतम वेग से बढ़ता है ?

४. इवान पावलोव (Ivan Pavlov) किस लिए प्रसिद्ध हैं ?

५. किस जाति के कुत्ते की जीभ काली होती है ?

६. उत्तरी नक्षत्र समूह (Cassiopea) की खो किसने की ?

७. वह कौन सा शहर है जो आधा-आधा खण्डों (continents) पर बसा हुआ है ?

८. कुत्ते से आतंकित बिल्ली के रोयें कि शारीरिक-क्रिया के फलस्वरूप खड़े हो जाते हैं ?

९. बेस-बाल (Baseball) के मैच में आम न्त्रित टीम तथा आमन्त्रण देनेवाली टीम में पहले कौन खेलेगा इसका निर्णय किस प्रकार कि जाता है ?

१०. पेन्सिल का आविष्कार किसने कि और कब ?

प्रतियोगिता संख्या ३५ के प्रश्नों के उत्तर

१. ब्रिटिश सर्जन, जासेफ लिस्टर ने, सन् १८६५ में।

२. श्रीलंका तथा उष्णकटिबन्ध के अन्य कुछेक प्रदेशों में उगनेवाले विशालतम बाँस (घास-परिवार) १२० फुट तक की ऊँचाई प्राप्त करते हैं।

३. केम्ब्रिज के डा. मेक्स फर्डिनन्ड पेरूज तथा डा. ज्हान काउड्रे केन्ड्रयू को प्रोटीन पर संशोधन कार्य करने के उपलक्ष्य में संयुक्त रूप से दिया गया है।

४. दो, तीन या पाँच सवारियों के लिए एक ही बाइसिकल पर जितने सवार, उतनी ही सीटें, उतने ही हैण्डिल और उतने ही पैडिल-सेट होते हैं। स्टीयरिंग के लिए केवल आगे का हैण्डिल घूमता रहता है, बाकी सब स्थिर (fixed) रहते हैं। यह बाइसिकल ओलम्पिक खेलों में दौड़ में काम आती है।

५. साथी मधुमक्खियों को संकेत द्वारा उ स्थल का पता बताती है जहाँ से स्वयं मधु चूसक लायी है और जहाँ उन्हें भी मिल सकता है।

६. अमेजन के मुहाने पर, जहाँ वह अतलांति महासागर से मिलती है।

७. भवन-निर्माण सम्बन्धी प्राचीन ग्रीक स्थापत्य की प्रणालियों के नाम हैं।

८. आर्मरप्लेट-शीशे की प्लेट; यह एक हाथी का वजन सहन कर लेगी।

९. प्रो. एस. पी. लैंगले (S.P. Langley) द्वार आविष्कृत अतिसूक्ष्म ताप को मापने का यन्त्र है। इसके द्वारा १°F के पाँच करोड़वें भाग त का ताप मापा जा सकता है।

१०. मिट्टी की पर्तें उलट-पुलटकर अधिक छिद्रमयी बनाते हैं जिससे आवश्यक वायु भीत तक सुगमता के प्रवेश कर सके और फलतः भूमि अधिक उर्वर बन सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

१. वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति के कारण निम्नांकित रिआयतें दिनांक १ जनवरी १९६३ से बन्द कर दी जाएँगी :

आई. आर. सी. ए. कोचिंग टैरिफ नं. १८ के नियम नं. ४०१ के अनुबन्ध की क्रम संख्या

जिन पर यह सूचना लागू होगी

१, २.	....	भारतीय एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं तथा समस्त खेल-कूद, एथ्लेटिक स्पोर्ट्स आदि ।
३.	....	पोलो की टीमें ।
४.	....	गणतन्त्र-समारोह तथा आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित होनेवाले, मान्य व्यावसायिक मनोरंजन-दल, समूह तथा कलाकार आदि ।
७.	....	शैक्षणिक प्रयोजन के लिए यात्रार्थी भारतीय एवं विदेशी छात्रगण ।
८.	....	भारत में विद्यार्जन करते हुए विदेशी छात्रगण ।
९.	....	न्यायशास्त्र के शिक्षार्थी छात्रगण ।
१८.	....	सामुदायिक योजनाओं में भाग लेनेवाले अवैतनिक कार्यकर्तागण, विद्यार्थियों सहित ।
१९.	....	सर्विस सिविल इण्टरनेशनल के स्वयंसेवकगण ।
२०.	....	राष्ट्र की प्रसार-सेवाओं में अवैतनिक सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा उनके दल ।
२१.	....	किसानों एवं औद्योगिक श्रमिकों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० व्यक्तियों का) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. .... राज्य विधान सभा के सदस्यों के दल (प्रत्येक दल क से कम २० सदस्यों का)।

२४. .... प्राइमरी, सैकण्डरी, हाईस्कूल तथा हायर सैकण्डरी स्कूल के अध्यापक एवं मान्य अनाथालयों के शिक्षक।

२५. .... कामनवेल्थ पार्लमेण्टरी एसोसिएशन की समस्त शाखाओं के सदस्य और उनके परिवार।

२६. .... शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व की अखिल भारतीय संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा समय-समय पर रेलवे बोर्ड द्वारा दी जानेवाली एतदर्थ (एडहॉक) रिआयतें।

२८. .... मान्यता प्राप्त अजायबघरों (पशुसंग्रहालयों) के लिए भेजे जानेवाले जानवर तथा परिन्दे।

२९. .... प्रदर्शनी के लिए भेजे जानेवाले कुत्ते, तीतर, बटेर, मुर्गि तथा अन्य परिन्दे।

५०४. .... शैक्षणिक यात्रा पर निकले हुए छात्रों की स्पेशल ट्रेनें।

५०५. .... केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा आयोजित किसान के लिए स्पेशल ट्रेनें।

५०६. .... यात्रा पर निकले हुए औद्योगिक श्रमिकों की स्पेशल ट्रेनें

२. उपरोक्त यात्राएँ यदि १ जनवरी १९६३ से पूर्व ही प्रारम्भ की गई हों तो ऊपर वर्णित रिआयतें उन्हें दी जा सकेंगी। १ जनवरी १९६३ के दिन तथा तदनन्तर प्रारम्भ होनेवाली उपरोक्त श्रेणियों की यात्राओं को वे रिआयतें प्राप्य न होंगी।

३. क्रिसमस की छुट्टियों के लिए रिआयती वापसी टिकट १५ दिसम्बर १९६२ से ३१ दिसम्बर १९६२ के मध्य की जानेवाली यात्रा के लिए दिए जाएँगे; १ जनवरी १९६३ को तथा तदनन्तर प्रारम्भ होनेवाली यात्रा के लिए नहीं।

चीफ कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

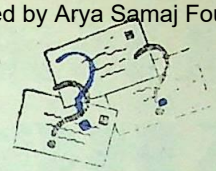

सुधीरकुमार गर्ग (८) कासगंज

प्रश्न—सेन्टीग्रेड पैमाने का आविष्कार किसने किया और कब ?

उत्तर—स्वीडिश वैज्ञानिक आन्द्रे सेलेसियस (Celesius Andre) ने १७४२ में।

जयप्रकाश साहा (७५१६)

प्रश्न—केथेटोमीटर क्या है, इसका उपयोग क्या है ?

उत्तर—दो निकटस्थ बिन्दुओं के मध्य का लेवल तथा ऊँचाई के अति सूक्ष्म अन्तर मापने का यन्त्र है। विशेषतः मर्करी-लेवल मापने के काम आता है।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२९२) आगरा

प्रश्न—वह कौन सा पक्षी है जो पानी की सतह पर तैरने के बजाय पाँवों से चलता है ?

उत्तर—ब्राजील में पाया जानेवाला जकाना, बगुले जैसा पक्षी है। इसके पंजे विशेषतः लम्बे होते हैं। वहाँ की झीलों में उगते हुए जल-कमल के विशाल गोल पत्तों पर पाँव टिकाकर, सरकाता हुआ यह एक तरह से पानी पर चल ही लेता है।

रमणीकलाल मोनाणी (८७२५) बांटवा

प्रश्न—यदि किसी बालक को जन्म से ही ऐसे स्थान पर रखा जाए जहाँ उसे पोषण तो बराबर मिलता रहे किन्तु मनुष्यों के सम्पर्क से दूर रहे, मनुष्य की बोली भी सुनायी न पड़े, तो बड़ा होने पर मनुष्य की भाषा वह तथा उसकी बोली मनुष्य समझ सकेगा क्या ?

उत्तर—मनुष्य कदाचित उसकी चेष्टाएँ समझ सके किन्तु उस बालक के पल्ले कुछ भी न पड़ेगा।

आलोक भट्टाचार्य (८७००) कानपुर

प्रश्न—रेडियो दूरदर्शी क्या है ? इसका आविष्कार किसने और कब किया ?

उत्तर—अन्तरिक्ष से निरन्तर आती हुई रेडियो रश्मियों के निरीक्षण के लिए आविष्कृत दूरदर्शी है। अमरीकन वैज्ञानिक ग्रोटे रबर ने १९३७ में इसका आविष्कार किया था।

राजेशकुमार माहेश्वरी (८४१६) सहारनपुर

प्रश्न—शरीर की त्वचा पर दाद क्यों हो जाती है, इसका उपाय क्या है ?

उत्तर—परजीवी फन्जाई (parasitic fungi) के सूक्ष्माणु तथा ट्राइकोफाइटन (Tricophyton) के जीवाणु इस चर्मरोग के मुख्य कारण हैं। प्रायः यह गन्दी जगहों पर नंगे पाँव फिरने से, गीले-सीले वस्त्र पहिनने से तथा जिन अंगों की नित्य सफाई ठीक से न हो पाती हो और उनमें नमी रह जाए वहाँ इनका सहज आक्रमण हो जाता है। धोबी की धुलाई भी इस संक्रामक रोग को ले आती है। इसे दूर करने के लिए कीटाणुनाशक साबुन से सफाई, कीटाणुनाशक मलहम आदि का प्रयोग तथा रोग की तीव्रता बढ़ने पर एक्स किरणों का भी सहारा लेना चाहिए।

शत्रुघ्न रावत (५५८२) मधुबनी

प्रश्न—सूर्य का क्रोमोस्फियर किस प्रकार निर्धारित किया गया ?

उत्तर—सर्वप्रथम सन् १७०६ में कैप्टन स्टेन्यन ने पूर्ण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर इसका अवलोकन किया था। सूर्य की ग्रहण से मुक्ति होते-होते उसके पश्चिमी पार्श्व पर केवल ६-७ सेकण्ड के लिए एक तीखी लाल रेखा दिखाई पड़ी थी। अब भी यह विशेषतः तो पूर्ण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर तथा सामान्यतः वर्णक्रमदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। रायल सोसाइटी ऑफ लन्दन के विलियम शारपे के परामर्श से जे. नार्मन लाक्यर ने १८६८ में उक्त सतहों का रंग लाल, नीला और पीला होने से क्रोमोस्फियर नाम दिया था।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२९१) ग्वालियर

प्रश्न—क्या कारण है कि वेनिस शहर में इतनी अधिक नहरें ही नहरें हैं ?

उत्तर—यह शहर १०० से भी अधिक नन्हे टापुओं को जोड़कर बसाया हुआ है।

आदित्यकुमार भट्टाचार्य (८६२०) जबलपुर

प्रश्न—वजनदार वस्तु को ढकेलकर उसमें वेग पैदा करना सरल है किन्तु उसे रोकना कठिन। क्यों ?

उत्तर—एक बार वेग में आ जाने पर उसमें संवेग (momentum) जो उत्पन्न हो जाता है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re.1·00
Book III.....Price : Re.1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामअवध चौरसिया (६४४०) गोरखपुर

प्रश्न—विज्ञान-लोक जून '६२ के अंक में मक्का की पैदावार बुशल के माप में दी गई है। इसकी सरल माप दीजिए।

उत्तर—अमरीकन बुशल की माप २१५१ घन इंच की है।

इन्द्रकृष्ण भट्ट (५०९२) आगरा

प्रश्न—जीरो वाट (zero watt) के बल्ब अपारदर्शक काँच के ही क्यों बनाये जाते हैं ?

उत्तर—इस बल्ब का मुख्य प्रयोजन सोने के कमरे में रात भर जलते रहने का है। काँच अपारदर्शक होने से सोनेवाले की आँख को रोशनी की चमक (glare) नहीं लगती।

शिम्भूशरण मेहरा (१५०४) आगरा

प्रश्न—सुना है, एक केकड़ा पेड़ों पर भी बसता है। वह कौन है ?

उत्तर—हिन्द तथा प्रशान्त महासागर में, विशेषतः श्रीलंका के निकट ऐसे केकड़े मिल जाएँगे जो ऊँचे नारियल के पेड़ों पर बसेरा करते हैं और नारियल ही खाते हैं। उन्हें कोकोनट-क्रैब (coconut crab) कहते हैं।

विजयकान्तसिंह (८००४) रामगढ़

प्रश्न—दूध के फटने का क्या कारण है ?

उत्तर—जो सूक्ष्माणु दूध को जमाकर दही कर देते हैं, उसी प्रकार के सूक्ष्माणु इसके लिए भी उत्तरदायी हैं। वातावरण में छाये तो रहते ही हैं, गन्दे बर्तन, बाहरी वस्तु का सम्पर्क अथवा दूध देने वाले पशु की ही कोई त्रुटि का मौका देखते ही ये सूक्ष्माणु अपना करिश्मा दिखा देते हैं।

कमलेशकुमारी (४६४) मुरादनगर

प्रश्न—लम्ब-माप की मेट्रिक प्रणाली का प्रारम्भ कब, किसने किया।

उत्तर—१७९१ में फ्रेन्च एकेडमी आफ साइन्सिज ने।

विजयकृष्ण मित्रा (१०३७) सतना

प्रश्न—स्टीमबोट का आविष्कार किसने किया और कब ?

उत्तर—फल्टन (Fulton) ने १८०७ में।

जयप्रकाश श्रीवास्तव (२८५) सौनौलिया

प्रश्न—कोलतार से भी कोई खाद्योपयोगी वस्तु प्राप्त करने की आशा रखी जा सकती है ?

उत्तर—क्यों नहीं ? हर एक को प्रिय, अत्यन्त मीठी, रोकरीन इसी से तो प्राप्त होती है।

अशोककुमार (१४६७) जमशेदपुर

प्रश्न—पेड़-पौधों के बीजों को बिखरना और दूर-दूर तक पवन तथा पक्षियों द्वारा उड़े-उड़े फिरना क्यों आवश्यक है। वहीं गिरकर भी तो भूमि से पुनः उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर—असंख्य बीज एक ही स्थल पर ढेर हो रहेंगे तो कितने ही नष्ट हो जाएँगे, और कितने ही उपजेंगे तो पेड़-पौधे इतने घने हो जायेंगे कि उनमें से भी अनेक को नष्ट हो जाना पड़ेगा। फिर, किसी भौगोलिक दुर्घटना-स्वरूप यदि वहाँ की भूमि ही नष्ट हो जाए तब तो उन पैतृक पौधों के वंश ही नष्ट हो जाएँगे ! बीजों की दूर-दूर यात्रा द्वारा उनकी उत्पत्ति सहज तथा सुरक्षित रहती है।

वेदप्रकाश गुप्ता (२४३) खंडवा

प्रश्न—ऐसा कौनसा पक्षी है जो खड़े होकर अण्डे सेता है, जबकि प्रायः ही पक्षी को बैठकर सेना पड़ता है ?

उत्तर—पेन्गुइन पक्षी खड़े होकर ही अण्डे सेता है।

सुरेशकुमार गुप्ता (७१९०) अमृतसर

प्रश्न—ल्यूटाइन बैल (Lutine Bell) से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—यह 'ल्यूटाइन' नामक एक जहाज का घण्टा है जो आजकल लायड्ज इन्श्योरेन्स के केन्द्रीय कार्यालय में टंगा रहता है। उक्त जहाज १७९० में हालैण्ड के निकट डूब गया था। तत्पश्चात् उसके अवशेष समुद्र-तल से प्राप्त करके उनमें से यह घण्टा कार्यालय में रखा गया है। किसी जहाज को यदि आने में विलम्ब हो तो अच्छे समाचार प्राप्त होने पर इसे दो बार और यदि दुखद समाचार हो तो एक बार बजाया जाता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

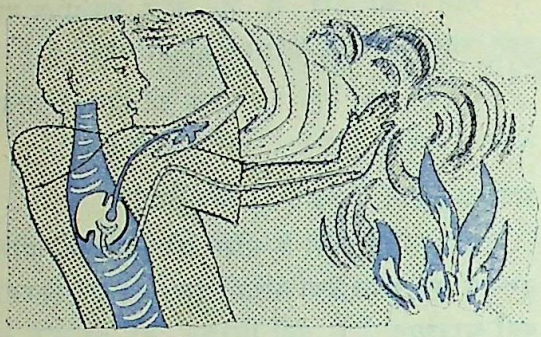

शरीर का पीड़ा-सायरन

अब्दुल हई कुरेशी (स. सं. ६७४१)

जरा भी चोट लगने पर हमें पीड़ा होती है। पीड़ा का आभास होते ही हमारा समस्त ध्यान उस स्थान पर केन्द्रित हो जाता है और हम उसकी मरहम-पट्टी करने लगते हैं। यदि हमें पीड़ा का आभास न हो तो हमें चोट लगने की खबर ही न होगी। चोट लगने के पश्चात् हमारे शरीर से खून बहता रहेगा। चोट लगने का पता हमें उस समय चलेगा जब हम अपनी आँखों से खून बहते हुए देखेंगे या अन्य व्यक्ति उस चोट के विषय में हमें संकेत करेगा।

पीड़ा तो स्नायुओं से उठी एक ऐसी तरंग है जो शरीर के किसी भी अंग को होनेवाली क्षति की सूचना मस्तिष्क को देती है। हमारी शरीर की त्वचा के प्रति वर्ग सें. मी. में मिलनेवाले स्नायु-तन्तुओं के सिरों पर ३००० संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। डा. वेडल ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि ये ही संवेदी कोशिकाएँ पीड़ा का अनुभव कराने में सहायक होती हैं। पीड़ा का आभास हमें तीन स्थलों पर—त्वचा, मांसपेशियों तथा हृदय पर होता है।

स्नायुओं का जाल

हमारे शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। जब किसी आन्तरिक अंग में दर्द होने लगता है तब उस अंग की संवेदी पीड़ा-तरंगें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। प्रायः इन दोहरी सूचनाओं के कारण मस्ति पीड़ाग्रस्त क्षेत्र का उचित निर्णय नहीं पाता। इसी कारण कभी-कभी हमें प्र होता है कि पेट में पीड़ा हो रही है डाक्टर जाँच करके कहता है कि वह छाती में है।

मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाले वि प्रकार के विचार भी पीड़ा को घटाने में सहायक होते हैं। मान लीजिए, गर्भवती स्त्री का यह विचार दृढ़ हो जाए उसे प्रसव के समय बहुत पीड़ा होगी अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होते हुए भी प्रसव के समय बहुत पीड़ा का अनुभव हो चिंता की स्थिति में साधारण सी भी अधिक कष्टप्रद प्रतीत होती है। की अनुभूति में भावनाओं का महत्व योग है। युद्धस्थल में किसी सैनिक का अंग विच्छेद हो जाता है तो भी उसे अ पीड़ा का आभास नहीं होता। दूसरी पांव में जरा सी मोच भी आ जाती लोग दर्द से विचलित हो जाते हैं।

विशेष अनुसंधान

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात है कि विभिन्न व्यक्तियों में पीड़ा अनुभव करने की क्षमता भिन्न-भिन्न है। सर रोनाल्ड मेलर्जेक और वि आर. टामसन ने इस विषय में कुछ ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये हैं। जब वे जन्तु छोटे थे, तब जलती हुई दियासलाई को देखकर भयभीत हो जाया करते थे। ज्यों-ज्यों उनकी आयु में वृद्धि होती गई, उनमें भय की मात्रा कम होती गई। एक ऐसा समय भी आया जब वे उससे जरा भी विचलित नहीं होते थे। पीड़ा का आभास शरीर के क्षतिग्रस्त अंग के अनुपात में कम या अधिक होता है। किसी अंग में तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है, किसी में मन्द। अधिक थकावट में अपेक्षाकृत कम पीड़ा का अनुभव होता है।

सम्मोहन-स्थिति और पीड़ा

सर रोनाल्ड मेलर्जेक ने यह भी सिद्ध किया है कि यदि किसी व्यक्ति का लक्ष्य किसी एक वस्तु पर केन्द्रित है और उसी एकनिष्ठ अवस्था में उसे सुई चुभोई जाए तो वह प्रत्यक्ष पीड़ा का अनुभव नहीं करेगा। अतः सम्मोहन-स्थिति में व्यक्ति साधारण चीर-फाड़ की पीड़ा का विशेष अनुभव नहीं करता।

इसी प्रकार जब खेल के मैदान में खिलाड़ियों का ध्यान खेल पर ही केन्द्रित रहता है तब उन्हें चोट की पीड़ा विचलित नहीं करती। इसका कारण यह है कि सम्मोहन-स्थिति में मस्तिष्क किसी एक ही वस्तु पर केन्द्रित होने के कारण स्नायु तन्तुओं के पीड़ा सन्देश को ग्रहण नहीं कर पाता।

इस प्रकार प्रकृति ने हमें किसी भी पीड़ा से अवगत कराने के लिए हमारे शरीर में यह सायरन व्यवस्था कर रखी है। यह सायरन तभी बज उठता है जब पीड़ा की अवस्था सीमा से बाहर हो जाती है अन्यथा सामान्य व्याधियों का पिटारा लिए हुए तो यह शरीर महीनों, वर्षों चलता रहता है। पीड़ा तीव्र होते ही हमें चिन्ता घेरने लगती है कि इस खतरे की घण्टी का रहस्य समझा जाए। ●

१९६५ से जनवरी १९६६) के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं।

● इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा।

● शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : २८ फरवरी १९६३।

विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा को आज ही मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अपने प्रण को दोहराने का समय है

आइये, आज हम हमलावर को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए अपने प्रण को दोहराएं। चौकसी और दृढ़ निश्चय में किसी तरह की ढिलाई न आने दें क्योंकि यह आपका अपना युद्ध है। यह फौरन काम करने का वक्त है। राष्ट्र सेवी संगठनों के स्वयंसेवकों की सूची में अपना नाम लिखवायें। कोई भी चीज ज़ाया न करें और फजूलखर्ची बिल्कुल बंद कर दें। खाने की चीजें और कपड़ा बहुत आवश्यक वस्तुएं हैं। इन्हें व्यर्थ नष्ट न करें। समय बड़ा कीमती है। इसे व्यतीत घंटों में न नापें बल्कि यह सोच कर नापें कि आपने क्या क्या काम कर लिया है। अपनी जिम्मेदारी निभायें। हर मामले में और हर समय अनुशासन से काम करें।

चोट के विषय में हमें संकेत करेगा।

पीड़ा तो स्नायुओं से उठी एक ऐसी तरंग है जो शरीर के किसी भी अंग को होनेवाली क्षति की सूचना मस्तिष्क को देती है। हमारी शरीर की त्वचा के प्रति वर्ग सें. मी. में मिलनेवाले स्नायु-तन्तुओं के सिरों पर ३००० संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। डा. वेडल ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि ये ही संवेदी कोशिकाएँ पीड़ा का अनुभव कराने में सहायक होती हैं। पीड़ा का आभास हमें तीन स्थलों पर—त्वचा, मांसपेशियों तथा हृदय पर होता है।

स्नायुओं का जाल

हमारे शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। जब किसी आन्तरिक अंग में दर्द होने लगता है तब उस अंग की संवेदी पीड़ा-तरंगें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। प्राय: उसे प्रसव के समय बहुत पीड़ा होगी अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होते हुए भी प्रसव के समय बहुत पीड़ा का अनुभव हो चिंता की स्थिति में साधारण सी भी अधिक कष्टप्रद प्रतीत होती है। की अनुभूति में भावनाओं का महत्व योग है। युद्धस्थल में किसी सैनिक का अंग विच्छेद हो जाता है तो भी उसे अ पीड़ा का आभास नहीं होता। दूसरी पांव में जरा सी मोच भी आ जाती है लोग दर्द से विचलित हो जाते हैं।

विशेष अनुसंधान

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात है कि विभिन्न व्यक्तियों में पीड़ा अनुभव करने की क्षमता भिन्न-भिन्न है। सर रोनाल्ड मेलर्जेक और वि आर. टामसन ने इस विषय में कुछ ज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक केवल २) में !

अन्तिम तिथि : २८ फरवरी

चतुर्थ वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में

विज्ञान-लोक

की

नवीन आकर्षक योजना

- इस योजना के अनुसार आप २०) भेजकर तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं।

- विज्ञान-लोक का वार्षिक शुल्क ९) है किन्तु इस योजना से आप तृतीय वर्ष (फरवरी १९६५ से जनवरी १९६६) के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं।

- इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा।

- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : २८ फरवरी १९६३।

विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा को आज ही मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी जगत में नया नवीन

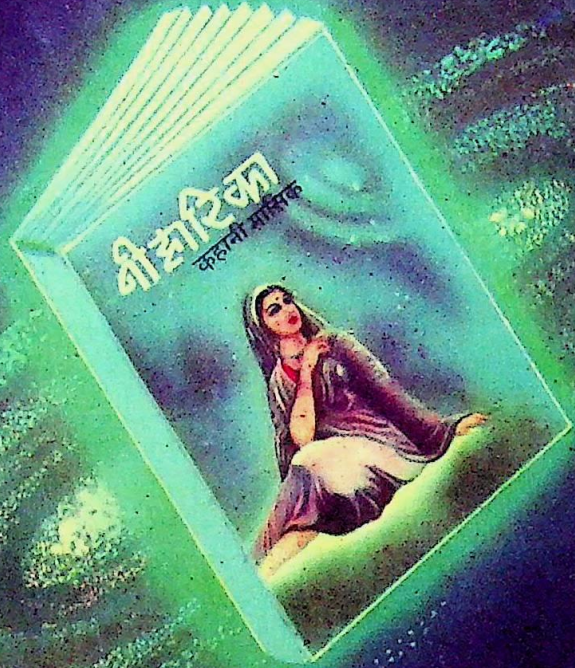

नीहारिका

• रोचक कहानियाँ

•• नयनाभिराम साज-सज्ज

न्यूज एजेण्टों, बुकस्टालों से उप

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रु

एक प्रति ६०

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar